॥ श्री ॥

कामकला विलासः

(टीका सहितः)

श्री पुण्यानन्द विरचितः

(श्री नटनानन्द विरचितया चिद्वल्याख्यया व्याख्यासहितः)

Rs 20

प्रकाशक

श्री पीताम्बरापीठ संस्कृत परिषद्

वनखण्डेश्वर, दतिया (म. प्र.)

॥ श्री ॥

कामकला विलासः

(टीका सहितः)

श्री पुण्यानन्द विरचितः

(श्री नटनानन्द विरचितया चिद्वल्याख्यया व्याख्यासहितः)

प्रकाशक :

श्री पीताम्बरापीठ संस्कृत परिषद्

वनखण्डेश्वर, दतिया (म. प्र.)

प्रथम संस्करण : १००० प्रतियां
संवत् २०३६ सन् १९७९

द्वितीय संस्करण : १००० प्रतियाँ
संवत् २०५५ सन् १९९८ (श्री गीता जयंती)

■

मूल्य : रु. १५-००

■

प्रकाशक :
श्री पीताम्बरा संस्कृत परिषद,
श्री पीताम्बरापीठ,
वनखण्डेश्वर, दतिया (म. प्र.)

■

मुद्रक :
सर्वोदय प्रिंटिंग प्रेस
बालाबाई बाजार, ग्वालियर-१
✆ ३३२२४६

प्रकाशकीय :

▪

अनन्तश्री विभूषित पूज्यपाद् स्वामी जी महाराज के शुभाशीर्वाद एवं भगवती की कृपा से आज प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वितीय संस्करण का प्रकाशन कर यह परिषद् परमानन्द का अनुभव कर रही है।

अस्तु ग्रंथ के द्वारा भगवती त्रिपुरा के तत्व से साधक गण अवगत हों और अपनी उपासना में प्रगति-शील हों ऐसी कामना है।

मंत्री
श्री पीताम्बरा पीठ
दतिया (म. प्र.)

श्री गीता जयंती
सं. २०५५

भूमिका

अनन्त श्री विभूषित परमहंस परिव्राजकाचार्य पूज्यपाद श्री स्वामीजी के शुभ आशीर्वाद से एवं श्री पीताम्बरा मां के अनुग्रह से आज यह परिषद इस महत्वपूर्ण प्रकाशन पर परमानन्द विभोर है।

सच्चिदानन्द स्वरूपिणी राजराजेश्वरी त्रिपुरसुन्दरी की उपासना ही मोक्षदायिनी है। परब्रह्म चित्संविद आदि ब्रह्म वाचक शब्द इसी तत्व की ओर इंगित करते हैं।

'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते' इत्यादि श्रुति वाक्यों की पर्यवसान भूमि यही श्री विद्या है। इनके विशाल साहित्य में सिद्धान्त पक्ष एवं व्यवहार पक्ष दोनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। प्रस्तुत प्रकाशन में इनका सिद्धान्त पक्ष अर्थात् दार्शनिक रूप, व्यावहारिक रूप अर्थात् साधना दोनों का मणिकांचन योग है। मंत्रराज पंचदशी एवं यंत्रराज श्रीचक्र दोनों का विस्तृत विवेचन साधकों को प्राप्त होगा। शिवशक्ति के सामरस्य बोधक श्रीचक्र एवं पंचदशी मंत्र दोनों हैं। पंचदशी मंत्र के अक्षरों में तीनों ककार और दोनों हकार शिव के वाचक हैं। शेष अक्षर शक्ति के वाचक हैं। ह्रींकार शिवशक्ति दोनों का वाचक हैं। इसी प्रकार श्री चक्र के नव त्रिकोणों में चार त्रिकोण शिव के और पांच त्रिकोण शक्ति के हैं तथा त्रिकोण अष्टकोण अन्तर्दशार बहिर्दशार चतुर्दशार ये पांच चक्र शक्ति के हैं। बिन्दु अष्टदल कमल षोडशदल एवं भूपुर ये शिव के चक्र हैं। बिन्दु शिव हैं और उसी से संलग्न त्रिकोण शक्ति है। इसके पश्चात् अष्टकोण दोनों दशार चतुर्दशार के पश्चात अष्टदल षोडशार और भूपुर शिव चक्रों के साथ सम्बन्धित हैं। इस प्रकार शिव और शक्ति के चक्र श्री चक्र में अविनाभाव से स्थित हैं। बिन्दु और त्रिकोण शिवशक्तिस्वरूपी हैं और यही दोनों मिलकर

भगवती के स्वरूप कामकला के बोधक हैं। जैसा कि ग्रंथ में वर्णित है उसे क्रमशः कारिकाओं के अनुसार दिया जाता है—

(१) शिव से लेकर पृथ्वी पर्यन्त ३६ तत्वमय समस्त संसार की उत्पत्ति स्थिति एवं प्रलय करना जिस परतत्व की लीला और क्रीड़ा है, पूर्णाहन्ता स्वरूपिणी विमर्श शक्ति जिनमें समाविष्ट है, प्रकाश स्वरूप ही जिनका दिव्य विग्रह है ऐसे परब्रह्म महेश्वर सब साधकों की रक्षा करें।

(२) आदि शक्ति पराभट्टारिका भगवति त्रिपुरसुन्दरी नित्यानन्द हैं। न तो कोई उससे अधिक है और न समकक्ष ही। दुश्मन चराचर विश्व की जन्मदात्री है, स्वयं प्रकाश स्वरूप शिव भी इस स्फुरणशील विमर्शरूपी आदर्श (दर्पण) में अपने आप के प्रतिबिम्ब को देखकर स्वरूप ज्ञान प्राप्त करते हैं।

(३) उसी परा शक्ति में शिवशक्ति का समागम है। बीज से अंकुर उत्पन्न होता है और अंकुर से बीज उत्पन्न होता है। यह दोनों शिवशक्ति के प्रतीक हैं और दोनों समान रूप से इसमें स्थित हैं। शिव ज्ञान शक्ति है। शक्ति क्रिया है। इन दोनों (ज्ञान और क्रिया) के द्वारा ही जगत का निर्माण सम्भव है। यह तत्व सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। अणुतर अर्थात् अकार विमर्श है और हकार प्रकाश है। इन दोनों के मिलने से बनने वाला अहं पद ही इनका वाच्य है। यही अहं अकार से लेकर हकार पर्यन्त समस्त मातृका एवं अकार शिव, हकार शक्ति का समन्वित रूप है।

(४) महाबिन्दु ही परतत्व का प्रारम्भिक रूप है। वहाँ पर शिव (निर्गुण ब्रह्म) अपने किरण जाल द्वारा निर्मल विमर्श स्फुरण शक्ति स्वरूपी दर्पण में प्रतिविम्बित हो रहा है। उस प्रतिबिम्ब का प्रतिबिम्ब जब चित्तमय अर्थात् ज्ञानस्वरूपी भित्ति पर पड़ता है तब महाबिन्दु का प्रादुर्भाव होता है जैसे सूर्य का

प्रतिबिम्ब दर्पण में आता है और उस दर्पण का प्रतिबिम्ब भित्ति पर पड़ता है। तब बिन्दु रूप ग्रहण करता है।

(५) अपने स्वयं के स्मरण के अनुभव की अभिव्यक्ति ही अहंकार है इसी अहं में अकार एवं हकार दोनों स्पष्ट रूप से एकाकार है। यही आदि दम्पति प्रकाश रूपी शिव एवं विमर्श रूपिणी शक्ति का सामरस्य स्वरूप है। वर्ण, पद, मंत्र ये तीनों शब्दाध्व एवं भुवन, कला, तत्व ये तीनों अर्थाध्व तथा ३६ तत्वों का समुदाय इन्हीं तत्वों में सन्निविष्ट है।

(६) श्वेत बिन्दु शिवात्मक है। रक्त बिन्दु शक्त्यात्मक है। ये दोनों परस्पर एक दूसरे में प्रविष्ट होते रहते हैं। कभी शिवबिन्दु का संकोच एवं प्रसार होता है कभी शक्तिबिन्दु का। इसी स्थिति में प्रसार और संकोच के समय जगत का निर्माण इस प्रकार है-- जैसे पुष्प के निर्माण में कलिका प्रादुर्भाव श्वेत बिन्दु अर्थ की सृष्टि करते हैं और रक्त बिन्दु शब्द का कारण है। ये दोनों बिन्दु एक दूसरे में प्रविष्ट हैं और पृथक भी हैं।

(७) रक्त एवं श्वेत बिन्दु के समागम से तीसरे मिश्र बिन्दु का आविर्भाव होता है। यही अहं पद है। इसी में अकार से लेकर हकार पर्यन्त समस्त वर्ण राशि समाहित है। किसी भी वर्ण के आगे कार प्रत्यय लगाया जाता है जिससे अकार, ककार, आदि शब्द बनते हैं। अहं भी वर्ण है और उसमें कार प्रत्यय लगने पर अहंकार शब्द बनता है। इस प्रकार यह मिश्रबिन्दु सूर्य-बिन्दु के नाम से प्रख्यात है। यह बिंदु अनन्त सौन्दर्य राशि है। अत्यन्त कमनीय होने के कारण इसकी काम संज्ञा है।

उपरि कथित दोनों बिन्दुओं में रक्तबिन्दु अग्नि श्वेतबिन्दु चन्द्रमा ये दोनों कला कहलाते हैं। इसी प्रकार मूल महाबिन्दु एवं त्रिकोण के तीनों बिन्दु सम्पूर्ण कामकला के स्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं। महाबिन्दु ही हार्दकला है। फलतः परमेश्वर परशिव जो अपने आप में समस्त भुवनों को धारण किये हुए हैं। विमर्श शक्ति जिसके अन्तर्लीन है। वह निराकार

अपनी विमर्श शक्ति में प्रविष्ट होकर बिन्दु रूप ग्रहण करते हैं। विमर्श शक्ति पूर्णाहन्ता स्वरूपिणी है और परशिव उसके अन्तर्गत है। इस प्रकार शिव में शक्ति एवं शक्ति में शिव अविना भाव से स्थित है। विमर्श शक्ति जब महाबिन्दु में प्रविष्ट होती है तब महाबिन्दु उच्छून होता है। अर्थात् अंकुरायमान चने के बीज के समान फूलता है और उससे नाद शक्ति का आविर्भाव होता है। समस्त तत्व इस शक्ति के गर्भ में हैं। यह अनन्त तेजोमयी एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म है। महाबिन्दु से निकलकर वह शक्ति सिंघाड़े के समान त्रिकोणाकार धारण करती है। इस प्रकार महाबिन्दु प्रकाश है। एवं त्रिकोणाकार नाद शक्ति विमर्श है। अहं शब्द में इन दोनों का समावेश है। इस प्रकार त्रिकोण के तीनों बिन्दु रक्त, शुक्ल, मिश्र तथा मध्यस्थित महाबिन्दु चारों बिन्दु मिलकर कामकला के विग्रह को अभिव्यक्त करते हैं।

कामकला का स्वरूप

कामकला–सूर्य

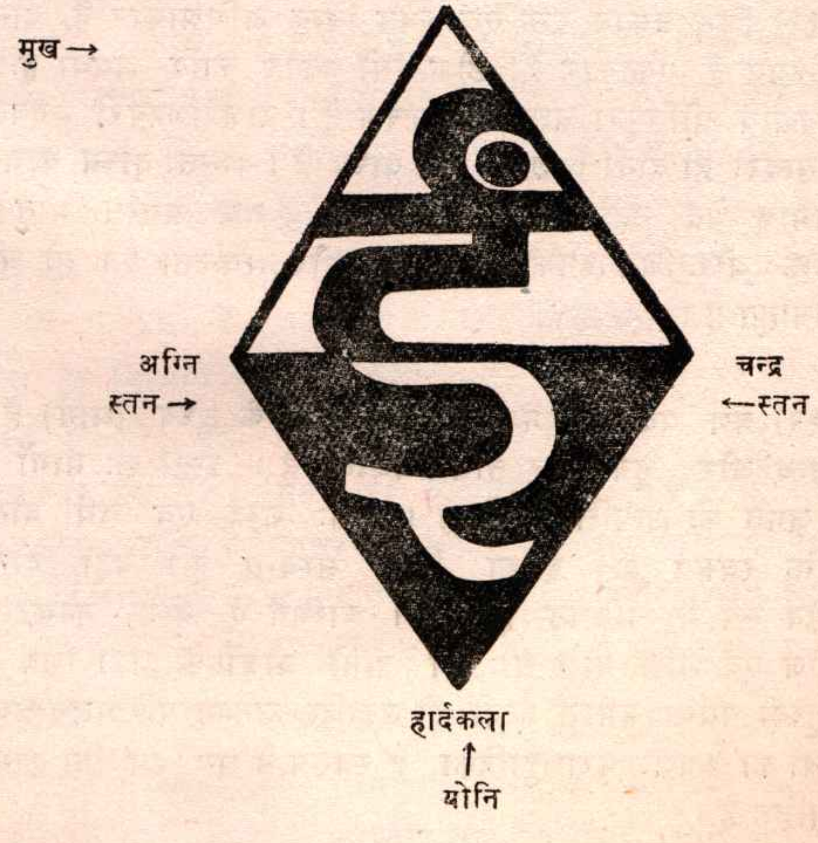

(८) उपरि वर्णित कारिकाओं में सिद्धान्त का कथन इस आठवीं कारिका में साधना का क्रम आरम्भ करते हैं यही कामकला विद्या जो श्री चक्र के क्रम द्वारा आराधन करता है वह मुक्त हो जाता है और भगवती उसे सारूप्य मुक्ति प्रदान करती हैं।

(९) अरुण बिन्दु के स्फुटित होने से सर्वप्रथम नाद ही अंकुर के रूप में उत्पन्न हुआ और उससे क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी तथा समस्त वर्णमाला की उत्पत्ति हुई।

(१०) इसी प्रकार श्वेत बिन्दु से भी वे ही पंच महाभूत आविर्भूत होते हैं। इस प्रकार इन्हीं बिन्दुओं का यह समस्त दृश्यमान संसार परिणाम है। अस्तु कामकला का ही विलास सम्पूर्ण विश्व है।

(११) जिस प्रकार रक्त एवं श्वेत बिन्दु अभिन्नाकार हैं, दोनों शिवशक्तिमय हैं, एकाकार हैं, ठीक उसी प्रकार कादि अथवा हादि दोनों विद्यायें श्रीत्रिपुरा तत्व की वाचक हैं। राजराजेश्वरी भगवती त्रिपुर सुन्दरी ही दोनों विद्याओं की वाच्य हैं। वस्तुतः वाच्य वाचक में लेशमात्र भेद नहीं है। अ से लेकर ह तक समस्त मातृका एवं शक्ति और शिव इनकी वाच्यता और वाचकता एक ही अहं पद में निहित है।

(१२) वर्ण पद एवं मंत्र ये तीनों शब्द के अध्व (मार्ग) हैं। कला तत्व और भुवन यह तीन अर्थाध्व हैं। इन्हीं छः मार्गों से समस्त जगत् की उत्पत्ति होती है। अतः शब्द एवं अर्थ दोनों शिवशक्ति स्वरूप हैं। इनका नित्य सम्बन्ध है। यही दोनों तत्व तीन रूप में परिणत होते हैं। वाग्भव ऐं बीज, कामराज क्लीं बीज एवं शक्ति बीज सौः इन तीनो बीजों के द्वारा शिव से लेकर पृथ्वी पर्यन्त समस्त तत्वों की उत्पत्ति, उनका परिपालन तथा उन तत्वों का क्रमशः पराभट्टारिका के स्वरूप में लय इन तीन कृत्यों में बिभाजित है।

(१३–१४) माता अर्थात् समस्त ज्ञान का ज्ञाता महेश्वर मान, ज्ञान, साधनभूता पंचदशी विद्या तथा मेय अर्थात् जानने योग्य भगवती त्रिपुर सुन्दरी सभी ये तीनों समष्टि रूप से निर्वाणरूपी महाबिन्दु में अवस्थित हैं। यही आत्म स्वरूप का ज्ञान है। इसे ही अहं अथवा परब्रह्म कहते हैं। इसी महाबिन्दु द्वारा सोम, सूर्य, अग्नि, तीनों मण्डल, कामगिरि, पूर्णगिरि, उड्डयान पीठ, इच्छा, ज्ञान, क्रिया तीनों शक्तियाँ स्वयंभूबाण, इतर, तीनों लिंग आदि, कादि, स्वादि त्रिखण्डा मातृका तथा त्रिविधात्मक सम्पूर्ण प्रपंच तुरीय जालन्धर पीठेश्वरि बिन्दु चक्र वासिनी भगवती श्री महात्रिपुर सुन्दरी से ही आविर्भूत हैं।

(१५-१६-१७) आकाश का गुण शब्द, वायु का स्पर्श, तेज का रूप, जल का रस, पृथ्वी का गुण गंध है। इसी गुण को भूतों का सूक्ष्म स्वरूप कहा गया है। यह सूक्ष्म रूप क्रमशः तत्वों में व्याप्त होते हैं। अर्थात् आकाश में एक गुण है और वायु में आकाश और वायु होने के कारण दोनों है। इसी प्रकार तेज में आकाश, वायु, तेज हैं तथा जल में इन तीनों के सहित जल और मिला देने से चार हैं। पृथ्वी में पाँचों हैं। इस प्रकार से १+२+३+४+५=१५ होते हैं। यही पंचदशाक्षरी श्री विद्या है। इसी क्रम के अनुसार मंत्रराज पंचदशी के अक्षरों से क्रमशः कामेश्वरी से लेकर चित्रा पर्यन्त १५ नित्यायें हैं जो पंचमहाभूतों के क्रमानुसार गुणों से व्याप्त है और वहीं नित्यायें प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा अथवा अमावस्या तक १५ तिथियों का रूप ग्रहण करती हैं। यह तिथियाँ शिव और शक्ति के सामरस्य रूप हैं जिनका दिन शिवस्वरूप एवं रात्रि कामेश्वरी रूप है। जिस प्रकार दिन और रात्रि मिलकर एक ही तिथि होती है उसी प्रकार पंचदशी का एक-एक अक्षर शिव-शक्ति दोनों का बोधक है।

(१८) ये सब अक्षर मिलकर पराशक्ति के दिव्य विग्रह को प्रकट करते हैं। शिवादि धरणीपर्यन्त ३६ तत्त्व इसी के परिणाम

हैं। समस्त प्रपञ्च उसी का स्वरूप है उसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

(१६) पंचदशी मंत्र भी उन्हीं का सूक्ष्म शरीर है। विद्या (वाचक) वेद्य (वाच्य) इन दोनों में अत्यधिक एकता है। जिसे ऋषि मुनि और योगी सभी स्वीकार करते हैं। इस महामंत्र के हादि एवं कादि दोनों प्रकार हैं। हादि मत में प्रथम कूट में पाँच स्वर सात व्यञ्जन, द्वितीय कूट में ६ स्वर ८ व्यञ्जन, तृतीय शक्ति कूट में चार स्वर एवं छः व्यञ्जन हैं। लोपामुद्रा द्वारा उपासित यह हादि विद्या है। कामराज उपासित कादि विद्या के प्रथम कूट में ७ स्वर एवं ५ व्यञ्जन हैं। द्वितीय एवं तृतीय कूट की स्वर व्यञ्जन संख्या में कोई अन्तर नहीं है।

(२०–२१) परा वाक् मूलाधार में शक्ति का नाद के रूप में शक्ति का प्रथमावतार है इस रूप का अनुभव अन्तःकरण में ही होता है। यह मन वाणी से अगोचर है सबका कारण महेश्वरी ही हैं। वहा परा वाक् नाभि चक्र में पश्यन्ति, हृदय में मध्यमा एवं कण्ठ में बैखरी बनकर अ से अः तक, क से त पर्यन्त, ठ से क्ष पर्यन्त तीन खण्डों में परिणत है। वेद तन्त्रादि समस्त वाङ्मय की जन्मदात्री मातृका है। यही श्रीचक्र में अभिव्यक्त होती है, परा महेशी भगवती का यही सूक्ष्म स्वरूप है। अनुभव मात्र गम्य है। चक्रराज इनका स्थूल स्वरूप है। इनमें लेशमात्र भी भेद नहीं है।

(२२-२३-२४) नव योन्यात्मक श्रीचक्र का नवमावरण बिन्दु चक्र के मध्य में स्थित है। यही समग्र विश्व के विकास का मूल है। परब्रह्म स्वरूपिणी त्रिपुरा का यही प्रथम सगुण स्वरूप है। उसकी इच्छा शक्ति से जब यह उच्छून होता है। चने के समान ही अंकुरायमाण विकासोन्मुख होता है। तब त्रिकोण रूप ग्रहण करता है। यही त्रिकोण के तीनों बिन्दु पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी के मूल

कारण हैं । बिन्दु एवं त्रिकोण के तीन बिन्दु इस प्रकार इन्हीं चार बिन्दुओं से कामकला का आविर्भाव है। इन तीनों बिन्दुओं के वाचक बाला के तीनों बीज हैं। इन्हीं के अन्तर्गत सत-रज, तम, आदि सभी त्रिक समाहित हैं। इसके आगे वामा, ज्येष्ठा, रौद्री, अम्बिका एवं पराशक्ति के ५ त्रिकोण शक्त्यात्मक हैं। इनकी स्थिति अधोमुख के रूप में है। इच्छा, ज्ञान, क्रिया, शान्ता' ये चार त्रिकोण शिवात्मक उर्ध्वमुख हैं इन्हीं नव त्रिकोणों से श्रीचक्र सम्पन्न होता है। इनमें व्यष्टि एवं समष्टि दोनों भेद मिलकर पश्यन्ती वाणी के एकादश स्वरूप हैं।

(२५) इस प्रकार कामकला पराम्बा त्रिबिन्दुमयी हैं। इन्हीं में ३६ तत्व एवं पंचदशी मंत्रराज के ३६ अक्षर समाहित हैं। इसी पराम्बा के विकास स्वरूप सत्व, रज, तम तीनों गुण हैं।

(२६) परावाणी बिन्दुस्वरूपिणी हैं और वह वामा आदि शक्तियों की सृष्टि हेतु पश्यन्ति रूप ग्रहण करती है। आगे चलकर नवत्रिकोणों में विकसित होकर मध्यमा भाग ग्रहण करती है।

(२७) मध्यमा वाणी का स्थान अनाहत चक्र है। जिसमें सूक्ष्म एवं स्थूल दोनों रूप समाविष्ट है। योगी जिस ध्वनि का अनुभव करते हैं। उनके प्रकार ९ हैं। चिणि, चिन्चिणी, घंटा, शंख, वीणा, वेणु, भेरी, मृदंग एवं मेघ, ये नवनादमयी सूक्ष्मा हैं। इसी प्रकार अ, लृ, क, च, ट, त, प, य, श, ये नव वर्गमयी स्थूल हैं। इन सब वर्णों की भूतलिपि है।

(२८) प्रथमोत्पन्न होने के कारण सूक्ष्मा मध्यमा कारण हैं और स्थूला मध्यमा कार्य हैं। वस्तुतः हेतु हेतुमान में तादात्म्य होने के कारण कोई भेद नहीं है।

(२९) इस प्रकार बिन्दु के विकास से त्रिकोण एवं त्रिकोण के विकास से अष्टकोण का प्रसार हुआ जिसमें श, ष, स, प, फ, ब, भ,

म, ये आठ अक्षर हैं। यह तीनों चक्र बिन्दुचक्रवासिनी भगवती के प्रभापटल से आलोकित हैं।

(३०) इस प्रकार उक्त तीनों चक्र अपनी प्रभा से भासित विकसित होते हैं और तवर्ग, टवर्गमय अन्तर्दशार एवं कवर्ग चवर्गमय वहिर्दशार चक्रों में परिणत होते है।

(३१) बिन्दु त्रिकोण अष्टकोण अन्तर्दशार बहिर्दशार का विकास चतुर्दशार चक्र है। इसके सभी दलों अकार से लेकर ओकार पर्यन्त १४ स्वर हैं।

(३२) अकारादि क्षकारान्त वर्णराशिमयी सर्व शब्दात्मिका वैखरी वाणी स्थूल है और सम्पूर्ण जगत् व्यवहार का कार्य सम्पादन इसी के द्वारा होता है इस वाणी के कारण क्रमशः परा, पश्यन्ति और मध्यमा हैं।

(३३) चतुर्दशार चक्र के पश्चात् क, च, ट, त, प, य, श, वर्गों से युक्त अष्टदल कमल चक्र है। यह वैखरी वाणी का व्यञ्जनात्मक स्वरूप है तथा षौडश तल चक्र सोलह स्वरों से संवेत है।

(३४) श्री चक्र स्थित तीनों वृत्त पूर्वोक्त रक्त, शुक्ल, मिश्र बिन्दुओं के तेज स्वरूप है। यही भगवती के तीनों नेत्र हैं। क्रमशः रक्त बिन्दु अग्नि श्वेत बिन्दु चन्द्रमा और मिश्र बिन्दु सूर्यात्मक है। भूपुरत्रय में आदि, कादि, त्रिखण्डा मातृका हैं। एवं पश्यन्ती, मध्यमा वैखरी तीनों वाणियाँ है।

(३५) परावाक् की गति दो प्रकार से विकसित होती है। पदविक्षेप एवं क्रमोदय भगवती त्रिपुरसुन्दरी के चरण से प्रसरित अनेक कोटिकिरणों द्वारा अनेकानेक ब्रह्माण्डों का निर्माण ही पद-विक्षेप है। क्रमोदय के दो रूप हैं। दिव्य सिद्ध मानवादि गुरुपंक्ति

एवं नवावरणस्थित समस्त शक्तियाँ सर्वोच्च सत्तास्वरूपिणी श्री पराम्बा के युगल चरणों का ही यह सम्पूर्ण प्रसार है ।

(३६) अनन्त तेजोराशिमयी यही महेश्वरि जब अपने आप अपने ही लिये (बहुस्याम्) का प्रस्ताव करती हैं उसी समय श्री चक्रराज के आकार में परिणत हो जाती हैं। आवरणों की सभी शक्तियाँ भगवती के दिव्य विग्रह के अवयवों के परिणमित रूप हैं।

(३७) सर्वानन्दमय बिन्दुचक्र की परिकल्पना सहस्रार स्थित परमाकाश जो कि सर्वोपरि स्थान है। वहीं पर भगवती विराजमान हैं। वह स्थान देश काल आकार आदि से परे है। वहीं पर भगवान कामेश्वर के वाम भाग के अंक में उनका नित्य निवास है। यही आद्य दम्पति हैं। इन्हीं के तादात्म्य भूत श्री गुरुनाथ एवं उनकी शक्ति है। उस एक रूप में ही गुरु एवं इष्ट देवता दोनों समाविष्ट हैं। चन्द्र मण्डल के मध्य में निवास करने वाली भगवती की अन्तिम षोडशी कला ही उनका सर्वश्रेष्ठ आवरण है।

(३८) भगवती के चारों हाथों में क्रमशः पाश इच्छा शक्ति है। अंकुश ज्ञान शक्ति और दो हाथों में धनुष और बाण ही उनकी क्रिया शक्ति है। इस प्रकार पाश स्नेह अंकुश ज्ञान है, और पंच तन्मात्रायें ही पाँच वाण हैं, और मन ही धनुष है। इस प्रकार चारों आयुध धारण किए हुए प्रातःकालीन रक्तिमा रंजित भगवान भुवन भास्कर की कान्ति को आत्मसात कर अरुणारुण प्रभा से उद्भासित हैं। चन्द्र सूर्य अग्नि उनके नेत्रत्रय हैं।

(३९) यही आदि मिथुन त्रिबिन्दु में (तीन रूप ग्रहण करता है।) मित्रेश नाथ कामेश्वरि, उड्डीश नाथ वज्रेश्वरि, षष्ठीश नाथ भगमालिनी, सत, रज, तम, त्रिगुण, कामगिरि, उड्डयान, पूर्णगिरि पीठत्रय दिव्य सिद्ध, मानव, ओघत्रय, लोकत्रय आदि त्रिकों का उद्गम स्थल यही त्रिबिन्दु है।

(४०) त्रिकोण विकसित होकर अष्टार चक्र में परिणमित होता है। यह संध्याकालीन रक्त आभा से मण्डित है। वसिनी आदि आठ शक्तियाँ वाणी की अधिष्ठात्री हैं। इनका शरीर चिन्मय एवं सूक्ष्म है। अपूर्णतारूपी महानरोग को निवृत्त कर पूर्ण अहंभाव प्रदान करती है। इसलिये इस चक्र का नाम सर्वरोगहर है।

(४१) अष्टार से लगा हुआ अन्तर्दशार चक्र है। इसमें दशों इन्द्रियों के विषयों की वृत्तियाँ हैं। यह शरत्कालीन चन्द्र के समान श्वेतवर्ण है। विद्युतप्रभा के समान कान्तिमान सर्वज्ञा आदि दश शक्तियाँ निवास करती हैं। इन्हीं की कृपा से इन्द्रिय जन्य विषयों पर नियन्त्रण सम्भव है, और इसी से साधक स्वरक्षित रहता है। अतः इस चक्र का नाम सर्वरक्षाकर है।

(४२) तत्पश्चात बहिर्दशार में दशों इन्द्रियों का विषय रूप अर्थात कार्य रूप से निवास करती हैं। जिनके ठीक-ठीक कार्य करने से सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अतएव इसे सर्वसिद्धिप्रद चक्र कहते हैं। यह स्फटिक के समान शुभ्र निर्मल एवं कान्तिमान है।

(४३) आगे चलकर चतुर्दशार चक्र में मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, एवं दश इन्द्रियाँ इस प्रकार १४ (चौदह) शक्तियाँ निवास करती हैं। यह संध्या के समान रक्तप्रभा रंजित है तथा भगवती का अन्तःकरण है। इसी को सर्वसौभाग्यदायक चक्र कहते हैं।

(४४) अष्टदल चक्र में अव्यक्त तत्व महत्तत्व अहंकार पंच-महाभूतों की तन्मात्रायें रहती हैं। इस चक्र का नाम सर्वसंक्षोभण चक्र है।

(४५) षोडशार चक्र में पंचमहाभूत दश इन्द्रियाँ एवं सोलहवां मन निवास करता है। श्री विद्या की यह विशेष अवस्था है। षोडश स्वर प्रतिदल पर कामाकर्षिणी आदि नित्य षोडश कलाओं के प्रतीक हैं। इस चक्र का नाम सर्वाशापरिपूरक है।

(४६-४७) श्री चक्र के तीन भूपुर है। प्रथम में त्रिखण्डा मुद्रासहित बाल सूर्य समान अरुणारुण कान्तिमय सर्व संक्षोभिणी आदि नव मुद्रायें हैं। यह चिन्मयी संवित्स्वरूपिणी पराशक्ति की स्वरूपभूता ही है। इन्हीं मुद्राओं के रूप में अकुल, मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि, लम्बिका, आज्ञा, सहस्रार इन नव आधारों की शक्तियाँ हैं। इन्हीं में नवनाथ समाहित हैं।

(४८) भूपुर की मध्य रेखा में भगवती की त्वचा आदि धातुयें एवं आठवां सम्पूर्ण विग्रह ब्राह्मी आदि अष्ट मातृकाओं के रूप में विराजमान है।

(४९) भूपुर की अन्तिम रेखा में अणिमा आदि अष्ट सिद्धियां हठयोग आदि अष्ट विद्याओं के रूप में समवस्थित हैं।

(५०) जिस आनन्द की मात्रा मात्र से विश्व के समस्त प्राणी जीवित हैं, उस परमानन्द परिपूर्ण तत्व का अहंभाव अर्थात् अहंकारात्मक ज्ञान ही परमानन्द रूपिणी त्रिपुरा है। आदि गुरु भगवान परमशिव से अभिन्न हैं। कामकलात्मक हार्द बिन्दु ही उनका अधिष्ठान है। सर्व द्रष्टा चिदानन्दघन प्रकाश विमर्श का सामरस्य यहीं पर है। कामेश्वर कामेश्वरि आदि दम्पति दिव्य सिद्ध, मानव ओघत्रययुक्त एवं गुरु मण्डल की स्थिति इसी बिन्दु में है। यही ब्रह्म यही आत्मतत्व है, यही ज्ञेय है। यही बिन्दु निष्कल निराकारतत्व का प्राथमिक अवतार है राजराजेश्वरि का श्रीचक्र ही संपूर्ण शरीर है, और उस शरीर में यह बिन्दु ही प्राण है। विमर्श शक्ति द्वारा जब बिन्दु में स्पंदन क्रिया होती है, तब पराशक्ति का अर्धभाग कामेश्वरि और अर्धभाग कामेश्वर के रूप में अभिव्यक्त होता है। इस प्रकार यह एक तत्व ही अपने को पति-पत्नी के रूप में विभाजित करता है। इसी प्रकार गुरु कामेश्वर शिष्य कामेश्वरि के रूप से अभिन्न हैं दोनों तत्व इसी बिन्दु में अविनाभाव से स्थित है। फलतः गुरु तत्व आत्म तत्व कामेश्वर कामेश्वरि केवल नाममात्र से भिन्न हैं। वास्तव में एक ही हैं।

(५१) त्रिकोण मध्यस्थित उड्डीयान पीठ श्रीपीठ है। जहाँ ज्ञानदाता श्री गुरुदेव शिवरूप में शिष्य कामेश्वरि रूप में हैं। इनका नाम श्री चर्यानन्दनाथ है। आदि युग सतयुग के प्रारम्भ में परमशिव ने अपने से अभिन्न पराभट्टारिका को श्रीविद्या क्रम का उपदेश दिया अतः भगवती कामेश्वरि ही देशिक स्वरूपिणी हैं। उन्हीं के द्वारा यह त्रिपुरा सिद्धान्त भूतलपर प्रवृत्त हुआ।

(५२-५३) बिन्दु पीठाधिवासिनी पराभट्टारिका की स्थिति ऊर्ध्व मुख त्रिकोण के ऊर्ध्व बिन्दु में स्थित हैं, यह कामपीठ है। इनके शिव का नाम ऊर्ध्व देवनाथ कामेश्वरि शक्ति के साथ विराजमान हैं। यह त्रेता युग के गुरु हैं जो वाग्भट पीठ के अधिष्ठाता हैं। दक्षिण कोण में जालन्धर पीठ पर श्री षष्ठदेवनाथ अपनी अभिन्न शक्ति वज्रेश्वरि सहित आसीन है। यह कामराज बीज के अधिष्ठाता एवं द्वापर युग के गुरु हैं। उत्तर कोण में पूर्णगिरि पीठ पर मित्रदेवनाथ भगमालिनी शक्ति से समन्वित है। यह शक्ति बीज के अधिष्ठाता है। यह बालगुरु कलियुग के सम्प्रदाय प्रवर्तक हैं। सर्वानन्दमय चक्र बिन्दुमय है उस बिन्दुपीठ को अधीश्वरि पराशक्ति ही त्रिकोण के त्रिबिन्दु रूप में ही विकसित है। अतएव वैन्दव चक्र ही प्राण है। त्रिकोण चक्र में भगवती कामेश्वरी द्वारा सात दिव्यौघ, चार सिद्धौघ, आठ मानवौघ गुरुओं का आविर्भाव हुआ जिनके द्वारा श्रीविद्या का सत्सम्प्रदाय भूतल में अवतरित हुआ, इनके द्वादश उपासक प्रसिद्ध हैं। परन्तु आज केवल कामराज संतान ही अविच्छिन्न रूप से चल रहा है। यद्यपि ग्रंथकर्त्ता श्री पुण्यानन्द ने हादि विद्या लोपामुद्रा को माना है। परन्तु उसी के समकक्ष कादि विद्या को भी मान्यता दी है।

(५४-५५) मुनीन्द्र पुण्यानन्द से कामकला स्वरूपिणी कामेश्वरि अंगना का यह विभ्रममय विलास परशिव स्वरूप रसिक शिरोमणि कामेश्वर को नित्य आकर्षित करें जिससे आनन्द भाव की अभिवृद्धि हो और शिवशक्ति का नित्य सामरस्य साधकों के हृदय में विकसित हो।

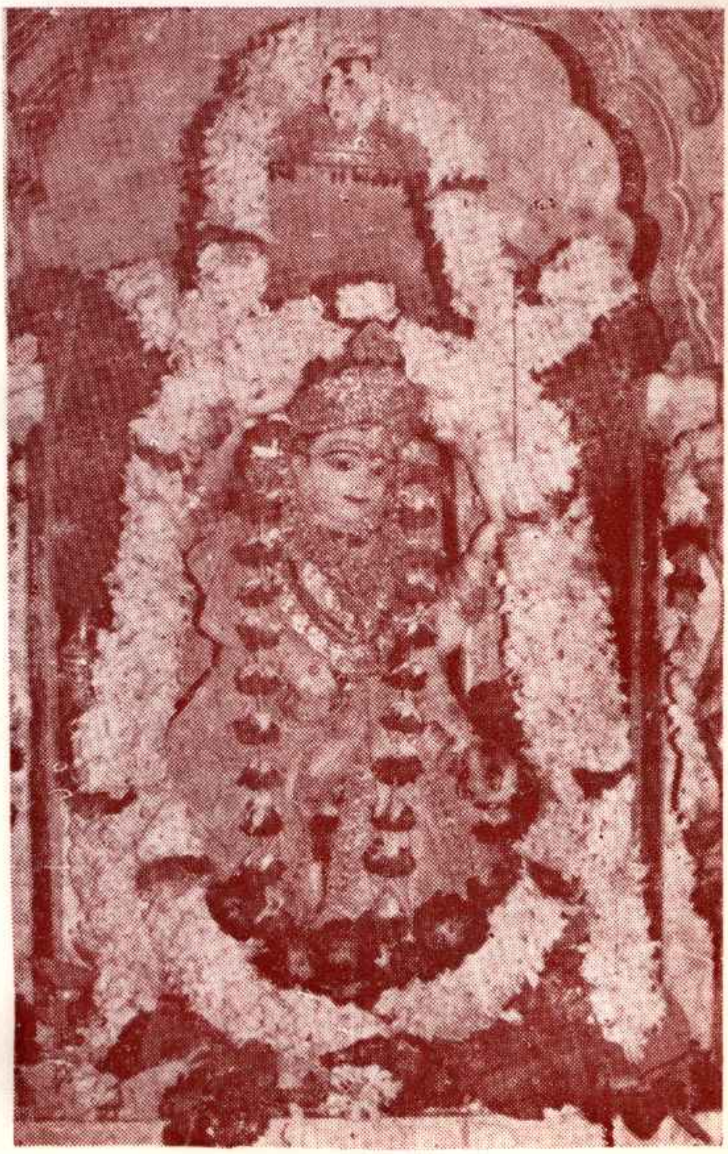

भगवती
श्री पीताम्बरा बगला

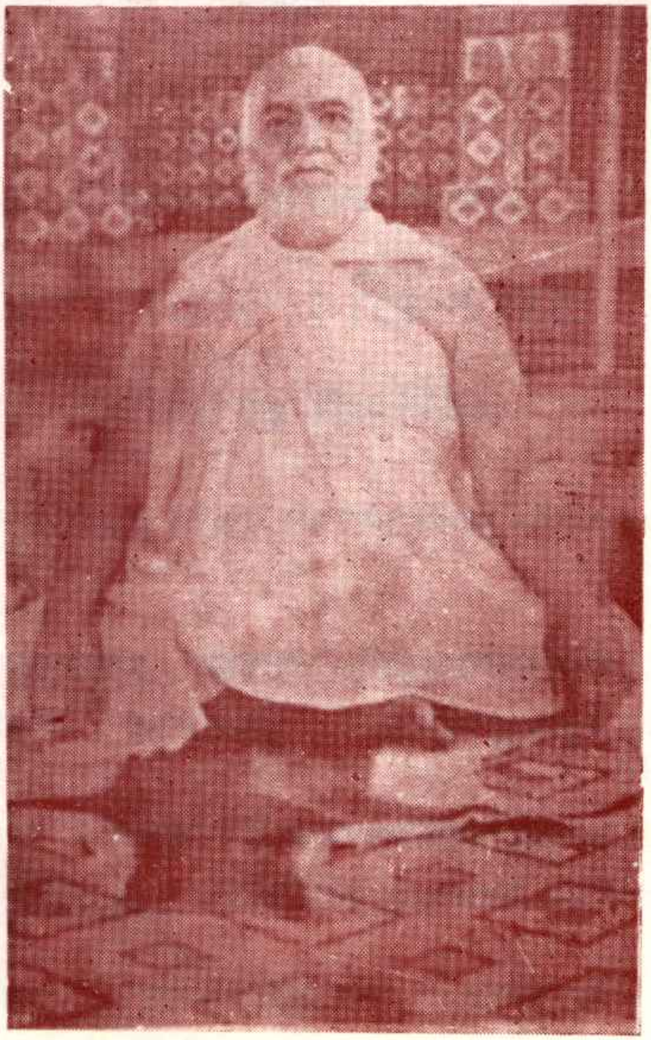

ब्रह्मलीन

श्री पीताम्बरा पीठाधीश्वर राष्ट्रगुरु परमपूज्य
श्री १००८ श्री स्वामी जी महाराज, वनखण्डेश्वर दतिया (म. प्र)

॥ श्रीः ॥

श्रीगुरुचरणारविन्दाभ्यां नमः

कामकला-विलासः

पुण्यानन्द विरचितः

(नटनानन्द विरचितया चिद्वल्ल्या सहितः)

नमश्शिवाय नाथाय चिद्रूपानन्दरूपिणे ।
श्रीमते चटुलापाङ्ग पाटितातङ्कशङ्कवे ॥१॥

वन्दे तन्मिथुनं दिव्यमाद्यमानन्दचिद्घनम् ।
अनुत्तरं परं ज्योतिरिति यद्भाव्यते बुधैः ॥२॥

श्रीमते नटनानन्दयोगिने परमात्मने ।
रक्तशुक्लप्रभामिश्रतेजसे गुरवे नमः ॥३॥

प्रणमत नाथानन्दं परया भक्त्या चिदैक्यबोधानन्दम् ।
उपनिषदर्थनिगूढं सकलजनानन्दभद्रपीठारूढम् ॥४॥

पुण्यानन्दमुनीन्द्रात्कामकला नाम विश्रुता जाता ।
आख्यां कांचिदमुष्या नटनानन्दः करोति सव्याख्याम् ॥५॥

इह हि शक्तिपातसमुन्मिषत्सकलवेदवेदान्ततात्पर्यनिर्णयविशारदाः सत्संप्रदायनिष्णाताः सर्वागमार्थावधारितात्मयाथार्थ्यविदः सच्चिदानन्दसिन्धुविहरणपटीयांसोऽत्रभवन्तः पुण्यानन्दाः स्वयं परमात्मानं प्रकाशयन्तः परमेश्वरमात्मत्वेन समाविशन्तः परेषामपि भक्तिभाजां पुरुषाणामुज्जिहीर्षुतया परमात्मैकत्वलक्षणं रक्षणमाशासते ।

सकलभुवनोदयस्थितिलयमयलीलाविनोदनोद्युक्तः ।
अन्तर्लीनविमर्शः पातु महेशः प्रकाशमात्रतनुः ॥१॥

अत्र पुण्यानन्दयोगिनः पुण्यवशात् स्वाभाविक भक्तिपरितोषितपरमगुरुवरकरुणाकटाक्षनिर्धूतनिखिलपाशस्तोमाः सकलविद्याधिदेवताभूतमहात्रिपुरसुन्दरीमन्त्रचक्रपूजाक्रमव्याचिकीर्षुतया तदधिष्ठानभूतकामकामेश्वरीरूपमादावाचक्षते—सकलेत्यादि— सकलानां भुवनानां उदयः उत्पत्तिः, स्थितिः रक्षा, लयः नाशः, एतत्त्रितयं तिरोधानानुग्रहयोरुपलक्षणम् । यथा त्रिवृत्करणं पञ्चीकरणस्य एतत्पञ्चविधकृत्यप्रचुरा या लीला तया विनोदनं क्रीडनम्, तस्मिन्नुद्युक्तः जागरूकः । मयाऽत्र प्राचुर्यार्थे विहितः । अन्नमयो यज्ञ इतिवत् । न तादृशे चिन्मय इतिवत् । कुतः पञ्चविधकृत्यं हि कार्यं जगन्निष्ठम् । लीला तु परमेश्वरनिष्ठा । तस्मादत्र सकलशब्दविशेषितभुवनपदेन भवत्यस्मादिति शिवादिधरण्यन्तं तत्त्वजातमुच्यते । एतेषां तत्त्वानां ब्रह्मणः सकाशादुत्पन्नत्वात्तस्मिन् स्थितत्वात्तस्मिन्नेव लयात् ॥ तथा च तैत्तिरीयश्रुतिः—"यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति । तद्विजिज्ञासस्व, तद्ब्रह्मेति ।" उद्युक्त इत्यनेन "स देव सोम्येदमग्र आसीत् । एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मेति । स्वान्तः स्थितं प्रपञ्चं बहुस्यां प्रजायेयेति । तदात्मानं स्वयमकुरुत" इति संकल्पविशिष्टलक्षणसृष्ट्युन्मुखोऽभूदित्युक्तं भवति ॥ तथा रहस्यगुरवः—"चिदात्मैव हि देवोऽन्तः स्थितमिच्छवशाद्बहिः । योगीव निरुपादानमर्थजातं प्रकाशयेत् ॥" इति । अत एवेश्वरस्य जगत्सृष्ट्यादिकं लीलामात्रम् न प्रयोजनमस्ति ॥ तथा च हृदयसूत्रम्—"स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति ।" तथा वचनमपि—"स्वेच्छयैव

जगत्सर्वं निगिरत्युद्गिरत्यपि ॥" इति । श्रुतिरपि—यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च" इति ॥ वचनान्तरमपि—

जगच्चित्रं समालिख्य स्वेच्छा तूलिकयात्मनि ।
स्वयमेव समालोक्य प्रीणाति परमेश्वरः ॥

एवं च महेश्वरः एक एव जगदुत्पादननिमित्तोपादानतामयते बहुस्यामिति बहुभवनश्रुतेः । एकमेवाद्वितीयमित्यधिष्ठानान्तरनिषेधाच्च । प्रत्यभिज्ञानसूत्रेऽपि—"चितिरेव चेतनपदाधिरूढा च ।" इत्यसंकोचनीचित्तमित्यनेन परमात्मैव जीवस्वरूपमगमदित्युक्तम् ॥ श्रुतिरपि—"अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि" इत्यब्रवीत् ॥ तथा ललितोपाख्यानेऽपि—

हृदयस्थापि लोकानामदृश्या मोहनात्मिका ।
नामरूपविभागं च या करोति स्वलीलया ॥ इति ।

चतुश्शत्यां च—

अस्यां परिणतायां तु न किञ्चित्परिदृश्यते ।

इत्यादिस्मृतिजालमुदाहर्तव्यम् । तथा छान्दोग्ये—"स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम्" इति एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं प्रतिज्ञाय, दृष्टान्तमाह—"वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यं" इत्यादिवचनात्, ब्रह्मैव तत्तदाकारेण परिणम्य विहरतीति सिद्धम् ॥ ननु एतावता प्रकरणेन जगतो ब्रह्मस्वरूपाव्यतिरिक्तत्वमुक्तम् । एवं च सति जगद्व्यतिरिक्तलक्षणं ब्रह्मस्वरूपं कीदृशमित्याकाङ्क्षायामाह – अन्तर्लीनविमर्श इत्यादिना—विमृश्यते परामृश्यते इदमिति विमर्शः प्रपञ्चः । इदमित्येव हि परमात्मना सृष्टस्य जगतः प्रसिद्धपरामर्शः ॥ तथा च श्रुतिः—"आत्मन आकाशः संभूत" इत्यारभ्य—"स वा एष पुरुषोऽन्नरसमय" इति शरीरसृष्टिमुक्त्वा तस्येदमेव शिरः, अयं

दक्षिणः पक्षः, अयमुत्तरः पक्षः, अयमात्मा, इदं पुच्छं प्रतिष्ठा, इत्यादिवाक्येन इदमिदमित्येव हि प्रपञ्चपरामर्शो दृश्यते ॥ परापञ्चाशिकायामपि—

अहमि प्रलयं कुर्वन्निदमः प्रतियोगिनः । इति ।

ब्रह्मप्रतियोगिभूतस्य प्रपञ्चस्य इदमानिर्देशः कृतः । एवं भूतो विमर्शः प्रपञ्चः अन्तर्लीनोऽन्तर्गतो विमर्शः यस्येति सः अन्तर्लीनविमर्शः । तदयमर्थः—स्वात्मसात्कृताखिलप्रपञ्चः परिपूर्णाहंभावभावनागर्भितः परमानन्दपरंज्योतिस्स्वरूपः परमात्मेति ।

एतच्च उत्तरत्र अहमर्थनिर्णयप्रकरणे प्रपञ्चयिष्यते । इहापि प्रसङ्गात् किञ्चिदुच्यते । ब्रह्म चाहमिति परमानन्दी भवति । तथा चोपनिषत्—"तस्माद्वा एतस्माद्विज्ञानमयात् अन्योऽन्तर आत्मानन्दमयः"—इति परमात्मानं निर्दिश्य—"तस्य प्रियमेव शिरः । मोदो दक्षिणः पक्षः । प्रमोद उत्तरः पक्षः । आनन्द आत्मा । ब्रह्मपुच्छं प्रतिष्ठा ।" इति पूर्णाहन्ताविशिष्टंपरब्रह्म ब्रवीति । ननु आनन्द आत्मेति आनन्दरूपत्वमात्मनः प्रतिपाद्यते । न तु पूर्णाहन्ताविशिष्टत्वं, तत्कथमुच्यते पूर्णाहन्ताविशिष्टत्वं परब्रह्मेति । आनन्दो नाम विश्वात्मभावना ॥ तथा सुबालोपनिषदि—"अन्नमयो भूतात्मा, प्राणमय इन्द्रियात्मा, मनोमयः सङ्कल्पात्मा, विज्ञानमयः कालात्मा, आनन्दमयो लयात्मा ।" इति । अत्र लयः पूर्णाहंभावना ॥ वचनमपि—"ध्यानकोटिसमोलयः" इति चिदानन्दघनं परमित्यत्र व्याख्यानम् । अमृतानन्दयोगिभिः चिच्चैतन्यकला, आनन्दो विश्वाहंतापरिणाम इत्युक्तत्वात् एवं व्याख्यातम् ॥ अथवा जगदुत्पत्तिस्थितिलयहेतुभूताकृत्रिमाहंभावपरामर्शो विमर्शः ॥ तथा नागानन्दाः—"विमर्शो नामः विश्वाकारेण वा, विश्वप्रकाशेन वा विश्वोपसंहारेण वा अकृत्रिमोऽहमिति स्फुरणम् । तस्यां तल्लीनत्वं नाम अन्तर्मुखत्वम् ॥" तथा चायमर्थः । अन्तर्लीनोऽन्तर्मुखीभूतो विमर्शः पूर्णाहंभावना यस्येति । तथा श्रीस्वच्छन्दशास्त्रे—

स तु योऽन्तर्मुखो भावः सर्वज्ञादिगुणास्पदः ।
तस्य लोपः कदाचित्स्यादन्यस्यानुपलम्भनात् ॥ इति ।

विरूपाक्षपञ्चाशिकायामपि—

स्वपरावभासनक्षमः आत्मा विश्वस्य यः प्रकाशोऽसौ ।
अहमिति स एक उक्तः अहन्तास्थितिरीदृशी तस्य ॥ इति ।

शिवानन्दस्वामिनोऽपि—

अहमित्यक्लमाक्रान्तसमस्तभुवनत्रयम् । इति ।

तत्तादृशपरब्रह्मणः परमेश्वरस्य प्रकाशैकस्वभावत्वं सर्वस्मात्परत्वं चाह—प्रकाशमात्रतनुर्महेश्वर इति—प्रकाशमात्रा प्रकाशानतिरिक्ता तनुः ॥ तथा च छान्दोग्ये—

यदतः परो दिवो ज्योतिर्दीप्यते ।
तं देवा ज्योतिषां ज्योतिरायुर्होपासतेऽमृतम् । इति ।

"स एष सम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय परं ज्योतिरुपसंपद्य स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत" इति ॥ "न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।" इत्यादि ॥ तथा रहस्यागमश्च—

स्वरूपज्योतिरेवान्तः परावागनपायिनी ।
वन्दे ज्योतिरनुत्तरम् । इति च ।

परापञ्चाशिकायामपि—"स एकोऽन्तरिदं ज्योतिरसस्तेजांसि तमांसि च ।" इति । सौभाग्यहृदयेऽपि—"तन्महः परमं नौमि" इत्यादि । अत्र प्रकाशत्वं नाम इच्छामि जानामि करोमि इत्युत्तमपुरुषान्तर्गतस्फुरणरूपाहं परामर्श एव । ततश्च सर्वज्ञत्वसर्वेश्वरत्वसर्वकर्तृत्वपूर्णत्वव्यापकत्वरूपपञ्चशक्तिसंवलितं परं ब्रह्मेत्युक्तं भवति ॥ ननु सूर्यादीनामपि प्रकाशकत्वं दृष्टम् । तत्कथमस्यैव परप्रकाशरूपत्वमित्यत आह - महेश इति—महांश्चासावीशश्च इति महेश इति । महत्वञ्चदेशकालाकारैरनवच्छिन्नस्वरूपत्वात् । ईशत्वं च सर्वनियन्तृत्वम् ॥ तथा च यजुश्श्रुतिः —

"यतो वाचो निवर्तन्ते"—इति सर्वप्रकारेणापरिच्छिन्नं ब्रह्मेति निर्दिश्य—

तस्यैवैषा परा देवी स्वभावामर्शनोत्सुका ।
पूर्णत्वं सर्वभावानां यस्या नाल्पं न वाधिकम् ॥

ब्रवीति । तथाऽथर्वणवेदोपनिषदि –"अथ कस्मादुच्यते महेश्वरः । सर्वान् लोकान् उद्गृह्णाति सृजति विसृजति वासयति । तस्मादुच्यते महेश्वरः" इति । उपनिषदन्तरेऽपि—

यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः ।
तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परस्स महेश्वरः ॥

"भीषास्माद्वातः पवत" इत्यादि ॥ "एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत" इत्यादि ॥ तथा प्रत्यक्षोपनिषत्—"यत्परं ब्रह्म स एको रुद्रः स ईशानः स भगवान् महेश्वरः स महादेवः" इति ॥ परापञ्चाशिकायामपि—

स एव सर्वभूतानां स्वभावः परमेश्वरः ।
स एव भैरवो देवो जगद्भरणलक्षणः ॥

इति परमेश्वरं निर्दिश्य—

तस्यैवैषा परा देवी स्वभावामर्शनोत्सुका ।
पूर्णत्वं सर्वभावानां यस्य नाल्पं न वाधिकम् ॥

इति संपूर्णरूपत्वपराशक्तियोगं परमात्मनो विधाय—

एष देवोऽनया देव्या नित्यं क्रीडारसोत्सुकः ।
विचित्रान् सृष्टिसंहारान्विधत्ते युगपत्प्रभुः ॥

अतिदुर्घटकारित्वमस्यानुत्तरमेव तत् ।
एतदेव स्वतन्त्रत्वमैश्वर्यं परबोधितम् ॥

इति ब्रह्मस्वरूपं सम्यक्प्रकल्प्य प्रपञ्चितम् । "एवं पराभट्टारिकासहितः श्री परमेश्वरः । एष सर्वेश्वरः, एष भूताधिपतिः एष भूतपाल एष सेतुर्विधरणः एषां लोकानामसंभेदाय" इति बृहदारण्यकोक्तरीत्या सर्वप्रकारेण सर्वरक्षकः परमेश्वरः परमात्मा युष्मान् पात्विति निरवधिकदयाशालिनः पुण्यानन्दाः पुण्यपुरुषानाशासते । पालनं चात्र परमात्मैकत्वरूपमेव ॥ तथा चिद्विलासे—"भेदलक्षणविपक्षसङ्कटात् तारणंपरमिहात्मरक्षणम् ।" इत्यभेदेन चिन्तनमभिप्रेतम् । इदं चात्र पुण्यानन्दानामाकूतं सर्वभूतसुहृत्परमात्मैवात्र लोके सद्गुरुरूपमास्थाय कतिचन भक्तिभाजः संरक्षतीति ॥ यजुश्श्रुतिः –"स चाचार्यवंशो ज्ञेयो भवत्याचार्याणामसावसावित्याभगवत्तः ।" "आचार्यवान् पुरुषो वेद आचार्यस्तु ते गतिं वक्ता ।" "त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयतीति ।" 'परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्रह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं सगुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।" इत्यादिश्रुतिजालं श्रीगुरूपसदनद्वारा ब्रह्मप्राप्तिमभिधत्ते ॥ यथा चागमश्च—

शिवशक्तिसमायोगाज्जन्मान्तरकृताच्छुभात् ।
शिवपूजानुचिन्ता स्यात्कर्म साम्यं यदा भवेत् ॥
शिव एव तदा साक्षादास्थाय गुरुविग्रहम् ।
दीक्षां करोति विश्वात्मा शम्भुशक्त्यनुवेधतः ॥ इति ।

गीता च—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः ॥ इति ।

अभियुक्तोक्तिश्च—"कल्याणिदेशिककटाक्षसमाश्रयेण कारुण्यतो भवति शाम्भववेधदीक्षा ।" परमशिवादिपदद्वयपारम्पर्यक्रमागतं भाव्यमिति च। अत्र किञ्चित्प्रसङ्गादुच्यते—"पातु महेशः प्रकाशमात्रतनुः।" इत्यनेन गुरुदेवतामन्त्राणामैक्यं प्रतिपादितम्। कथम् आचार्यस्य प्रकाशकत्वम् अस्त्येव। तथा सूत्रम्—"तथा गुरुरुपायः" इति। तथा तद्वृत्तिकारोऽपि—"गृणातीति गुरुस्तत्त्वं स्तोत्रव्याप्तिप्रदर्शकः। मन्त्रवीर्यस्य तेनासावुपाय इति कीर्तितः॥" रक्षकत्वं मन्त्रस्याप्यस्ति। मननात् त्रायत इति मन्त्रशब्दार्थः। यथागमश्च—"मननात्त्राणधर्माणो मन्त्राः स्युः परिकीर्तिताः।" इति। शिवसूत्रमपि—"चित्त मन्त्रे" इति चेतन्यरक्षकत्वं मन्त्रस्य प्रतिपाद्यते। अयमर्थः चतुश्शत्यापि अथषट्कनिरूपणप्रकरणे निगर्भाभिधेययोः प्रतिपाद्यते—

निगर्भार्थो महादेवि शिवगुर्वात्मगोचरः।
तत्प्रकारं च देवेशि दिङ्मात्रेण वदामि ते॥
निष्कलतत्वे शिवे बुध्वा तद्रूपत्वं गुरोरपि।
तन्निरीक्षणसामर्थ्यादात्मनश्च शिवात्मता॥ इति।

एतदभिप्रायेणास्मदाचार्यवर्यैः श्रीशङ्करानन्दगुरुभिरपि सम्यक् निरणायि—

नमश्शिवाय नाथाय चिद्रूपानन्दरूपिणे।
श्रीमते चटुलापाङ्गपाटितातङ्कशङ्कवे॥ इत्यादि।

तथा श्वेताश्वतरोपनिषदि—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥ इति।

एव च सत्संप्रदायिभिरेव माहेश्वरैः आत्मा कामेश्वरः प्राप्यते। न तु अन्यैरित्य प्रसक्तानुप्रसक्तया। प्रकृतमनुसरामः॥

ननु कथमयमात्मा परमशिवभट्टारक एवं सर्वकर्तेत्युच्यते, तस्य सर्वकर्तृत्वनिषेधश्रवणात्। श्रूयते हि—"न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च विद्यते। परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते" इति पराभट्टारिकासंबन्धादेव सर्वकर्तृत्वसर्वाभ्यधिकत्वप्रतिपादनपुरस्सरं पराभट्टारिकाया एव सर्वजगदुत्पत्तिश्रवणात्। किञ्च—"आनीदवातं स्वधया तदेकम्।" इति। "श्रद्धया देवो देवत्वमश्नुते।" इत्यादि॥ "सा सक्षिणी विजयते तव मूर्तिरेका।" इत्यभियुक्तस्मृतिश्च। पराभट्टारिकासन्निधानादेव अस्य महेश्वरस्य सत्ताश्रवणाच्च। केवलमीश्वरस्य सर्वकर्तृत्वादिकं न संघटत इति सत्यम्। नहि वयं परमेश्वरः परमशिवः पराभट्टारिकारहितः केवलकर्तेति वदामः। किन्तु शिवशक्तिरूपकमेव तत्वमिति निश्चित्य तस्य कारणत्वमवोचाम। तथा प्रामाणिकवचनम्—"शिवशक्तिरिति ह्येकं तत्त्वमाहुर्मनीषिणः," इति॥ श्री स्वच्छन्देऽपि—"तत्त्वारूढस्स भगवान् शिवः परमकारणम्। शिवस्सर्वस्य कर्तेयं शक्तिः कारणमुच्यते" इति उभयोरपि कर्तृत्वमुच्यते॥ तत्रैव—

शिवाभिन्ना परा शक्तिः सर्वकर्मशरीरिणी।
वामादीच्छादिभेदेन मिथुनत्रयतां गता॥

इति स्मरणात् एकमेव जगत्कारणम्। अन्यथा श्रुतिविरोधः प्रसज्येत सदेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयं ब्रह्मेति एकत्वावधारणम्। तस्माच्छिवस्य कारणवचनं शक्तेरपि समानम्। अत एव शक्तेरपि कर्तृत्वमुच्यमानं शिवस्यापि तुल्यम्॥

न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः।
नानयोरन्तरं किञ्चिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव॥

इत्यागमसिद्धान्तरीत्या पराभट्टारिकाया अपि सर्वकारणत्वमाह—

सा जयति शक्तिराद्या निजसुखमयनित्यनिरुपमाकारा।
भाविचराचरबीजं शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्शः॥२॥

सा आद्या शक्तिरनवच्छिन्ना पराभट्टारिका महात्रिपुरसुन्दरी जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । सैव शिवादिक्षित्यन्तषट्त्रिंशत्तत्वमयसर्वप्रपञ्चात्मिका तदुत्तीर्णा चेति सर्वोपनिषत्प्रसिद्धा त्रिपुरा अभिधीयते । एवं हि सत्संप्रदायविद्भिः महायोगिभिः पुरुषैः त्रिपुराशब्दनिर्वचनं क्रियते । कथं त्रिभ्यस्तेजोऽबन्नादिभ्यः पुरा भूता त्रिपुरेति । तेजोऽवन्नादिभ्यः पूर्वसत्त्वमेव हि सर्वतत्त्वातिक्रान्तत्वं ब्रह्मणः तद्द्वारा सर्वतत्त्वात्मकत्वं च उपनिषदप्येवमेवाह—

तथा छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके—"श्वेतकेतुर्हारुणेय आस तं ह पितोवाच श्वेतकेतो वस ब्रह्मचर्यम् ।" इति पुत्रस्य वेदाध्ययनादिरूपब्रह्मचर्यम् विधाय—"स ह द्वादशवर्ष उपेत्य चतुर्विंशतिवर्षस्सर्वान्वेदानधीत्य महामना अनूचानमानीस्तब्ध एयाय, तं ह पितोवाच, स्तब्धोऽस्युत तमादेशमप्राक्ष्यो येनाश्रुतं श्रुतंभवत्यमतं मतमविज्ञातं विज्ञातम् ॥ इत्यादिना शिष्ययोग्यतां निश्चित्य आचार्यो ब्रह्मविद्यामुपादिशत् । तत्र एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानद्वारा सर्वतत्वानां तन्मयत्वमुक्तम् । तत्र दृष्टान्तमाकाङ्क्षमाणः शिष्यः पृच्छति । "कथं नु भगवः स आदेशो भवति ।" इति—

"यथा सोम्यैकेन मृत्पिण्डेन सर्वं मृण्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम् ।" इत्यादिदृष्टान्तपरम्परया परब्रह्मणो विश्वात्मकत्वं तदुत्तीर्णत्वं चाभ्युत्थाय अनन्तरं च—"सदेव सोम्येदमग्र आसीत्, एकमेवाद्वितीयम्" इत्यादिना विश्वातीतं वस्त्वमिधाय पुनश्च विश्वात्मकमभिधत्ते—"तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति संकल्प्य तत्तेजोऽसृजत इति तेजोऽबन्नाति सृष्ट्वा सेयं देवतैक्षत हन्ताहमिमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि । तासां त्रिवृतमेकैकां करवाणि सेयं देवता इमास्तिस्रो देवता अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत् । तासाँ त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकामकरोदित्यादिना तेजोऽबन्नानामहंभावेन ब्रह्मणः सर्वपूर्ववर्तित्वं सर्ववस्तुपूरकत्वं च स्वस्वरूपकमित्युक्त्वा तेजोऽबन्नात्मकमेव देवादिस्थावरान्तं तत्वजालमाचष्टे । यथा वा अपादाग्नेरग्नित्वं वाचारम्भणं विकारो नामधेयं त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यमित्यादिना अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुः तत्पुरीषं भवति ।

यो मध्यमस्तन्मासं योऽणिष्ठस्तन्मनः इत्यादिना त्रिवृत्कृतप्रपञ्च-पूरणात्रिपुरैव परब्रह्ममेत्यभिधीयते ।

इममेवार्थमुत्तरत्र ग्रन्थकारः—"षट्त्रिंशत्तत्वात्मा तत्त्वातीता च केवला विद्या ।" इति । स्मृतिरपि—

विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां हृदयं परमेशितुः । इति ।

श्रीवामकेश्वरतन्त्रेऽपि—

त्रिपुरा परमा शक्तिराद्या जाता महेश्वरी ।
स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रलोक्योत्पत्तिमातृका ।
कबलीकृतनिश्शेष तत्त्वग्रामस्वरूपिणी ॥ इति ।

श्री स्वच्छन्देऽपि –

नात्र कालः कलाभावः नैकता न च देवता ।
सुनिर्वाणं परं तत्त्वं रुद्रवक्त्रं तदुच्यते ॥
शिवशक्तिरिति ख्यातं निर्विकल्पं निरञ्जनम् ।
पश्यातीतं वरारोहे वाङ्मनोऽतीतमद्भुतम् ॥
अनिष्कलं च सकलं नीरूपं निर्विकल्पकम् ।
निर्द्वन्द्वं परमंतत्वं शिवाख्यं परमं पदम् ॥ इति ।

अस्मदुक्तसच्चिदानन्दवासनायां च—

विश्वात्मिकां तदुत्तीर्णां प्रकाशामर्शरूपिणीम् ।
परापरमयीं देवीमात्मत्वेन विशाम्यहम् ॥

इत्यादिबहुश्रुतिस्मृत्यादिषु सर्वोत्कृष्टत्वं त्रिपुरायास्तत्र तत्र चोद्धोष्यते । एतदेव विवृणोति – निजसुखमयनित्यनिरुपमाकारे-त्यनेन—निजः स्वाभाविकः । सुखमयः दुःखसंभिन्नानन्दरूपः ।

नित्यः सार्वकालिकः । निरुपमः निस्समाभ्यधिकः । आकारः स्वरूपं यस्यास्या । तदयमर्थः—निरवधिकाकृत्रिमात्मानन्दरूपिणीति । तथैवोपनिषत्—"तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् । स एको मानुष आनन्दः", इत्युपक्रम्य "स एकः प्रजापतेरानन्द" इत्यन्तं उत्तरोत्तरशतगुणितक्रमेण मनुष्यादिचतुर्मुखपर्यन्तं पुरुषाणामानन्दपरम्परामुपन्यस्य "स एको ब्रह्मण आनन्दः स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये स एकः" इति । सर्वोत्कृष्टानन्दब्रह्मणः सर्वात्मकत्वं सर्वोत्तीर्णत्वं वक्ति । उपनिषदन्तरेऽपि "भूमैव सुखं भूमात्वेव विजिज्ञासितव्यः" इत्युक्त्वा "यत्र नान्यत्पश्यति, नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा" इति अपरिच्छिन्नानन्दमयमेव ब्रह्म श्रूयते । तथा च एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति, इतरेषां ब्रह्मानन्दसमुद्रविप्रुट्त्वमुच्यते । वामकेश्वरतन्त्रे— चतुश्शत्यां—

प्रणमामि महादेवी परमानन्दरूपिणीम् ।
अद्यापि यस्या जानन्ति न मनागपि देवताः ॥
नित्यानंदघनं परम् । इति ।

नित्यानन्दे निरुपमपदे निर्मले निर्विकल्पे इति निष्यन्दमानसुखबोधसुधास्वरूपेति परमानन्दसन्दोहप्रमोदभरनिर्भर इति परमानन्दसम्पूर्णपद सौभाग्यदायकमित्याद्यभियुक्ततमोक्तया च सच्चिदानन्दस्वरूपिणी त्रिपुरेति निश्चीयते । भाविचराचरबीजं भाविनोरुत्पद्यमानयोश्चराचरयोः स्थावरजङ्गमयोर्बीजं योनिः कारणमित्यर्थः । यजुश्श्रुति—"यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद्विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः *हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो देवः शुभया स्मृत्या संयुनक्तु । स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिः ज्ञः कालकालोगुणीसर्वविद्यो यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोतीति स ईशोऽस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय । एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं बीजं वहुधा यः करोति" इत्यादिर्द्रष्टव्यः । आगमश्च—

*प्रभवश्चोद्भवश्च इति पाठान्तरम् ।

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी ।
स्फुरत्तामात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य संभवः ।।
यथा न्यग्रोधबीजस्थशक्तिरूपो महाद्रुमः ।
तथा हृदयबीजस्थं जगदेतच्चराचरम् ।।

ललितोपाख्याने च—

या ससर्ज विधातारं सर्गादौ वारिपूरितम् । इति ।

परावासनायामपि—

जगच्चित्रं समालिख्य स्वयमेवात्मविग्रहम् ।
स्वयमेव समालोक्य सन्तुष्टां परमाद्भुताम् ।।
प्रकाशजीवसंलीनविमर्शात्मस्वरूपिणीम् ।। इति ।

ननु शिवस्य जगन्निर्मातृत्वं शक्तया विना न संगच्छेत् । एवं पराशक्तेरपि परमशिवेन विना कारणत्वं न बोभवीति तत्कथमुच्यते—भाविचराचरबीजमिति - अत आह शिवरूपविमर्श-निर्मलादर्श इति—शिवस्य स्वरूपमहमित्येवमाकारं तस्य विमर्शः परामर्शः । परामर्शनमहमित्येवं रूपंज्ञानम् । तस्य प्रकाशने निर्मलादर्शः सम्यक् प्रकाशनचतुर इत्यर्थः । अयमर्थः - यथा सिंहासनारूढः कश्चिद्राजा अतिसुन्दरः स्वात्माभिमुखावस्थितस्वच्छदर्पणतले स्वात्मप्रतिबिम्बं सम्यक् प्रसमीक्ष्य तत्प्रतिबिम्बं अयमहमिति जानाति । एवं परमेश्वरोऽपि स्वाधीनभूतां स्वात्मशक्तिं सम्यगवलोक्य स्वस्वरूपमवगच्छति परिपूर्णोऽहमिति एवं च दर्पणस्य स्वसन्निहित-वस्तुसंबन्धाभावे स्वान्तर्गतप्रतिबिम्बावभासनमनुपन्नं भवति । तद्वत् पराशक्तिरपि परमशिवसंबन्धाभावे स्वान्तस्थितप्रपञ्चनिगरणं न संघटत इत्यर्थात् लभ्यमेवैतत् । तस्मान्न केवलेन शिवेन वा केवलया शक्तया वा जगन्निर्मीयते । किन्तु उभाभ्यामेव कामकामेश्वराभ्यां अखिलं तत्वजातमातन्यते । यथा श्वेताश्वतरोपनिषदि—"य एको

जालवानीश ईशनीभिः सर्वान्लोकानीशत ईशनीभिः य एवैक उद्भवे संभवे च । य एको वर्णो बहुधा शक्तियोगाद्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति । विचैतिचान्ते विश्वमादौ स देवः स नो बुद्धया शुभया संयनक्तु" इति । यथोक्तमभियुक्तैश्च—

स्वेच्छाविभावितानन्दजगद्रश्मिविलासवत् ।
नौमि संविन्महापीठं शिवशक्तिपदाश्रयम् ॥ इति ।
अखण्डितस्वभावोऽपि विचित्रां मातृकल्पनाम् ।
स्वहृन्मण्डलचक्रे यः प्रथयेत्तं नुमश्शिवम् ॥

सशक्तिकमहमित्येवं रूपं परब्रह्मेति निर्णीतम् । अत्र यद्वक्तव्यं तदुत्तरत्र सम्यक् प्रपञ्च इत्यलम् ॥ ननु निर्विमर्शमेव ब्रह्म वदन्ति केचन् । तत्कथम् उच्यते सविमर्शकं ब्रह्मेत्यत आह—

स्फुटशिवशक्ति समागमबीजाङ्कुररूपिणी पराशक्तिः ।
अणुतररूपानुत्तरविमर्शलिपिलक्ष्यविग्रहा भाति ॥३॥

अस्यार्थः—अत्र पराशक्तिशब्देन प्रकृत्याख्या महात्रिपुरसुन्दरी अभिधीयते । चिदानन्देच्छाज्ञानक्रियारूपेति या श्रुतिः जगत्प्रसिद्धा सा त्वेवमुच्ते । —स्फुटशिवशक्तिसमागमबीजाङ्कुररूपिणीति—शिवश्च शक्तिश्च शिवशक्ती, तयोस्समागमः संयोग । स्फुटः व्यक्तः शिवशक्तिसमागमो योऽयं तेन बीजाङ्कुररूपिणी बीजादङ्कुरं अङ्कुराद्बीजमितिवत्, शिवतत्त्वादि क्षितितत्त्वपर्यन्तं तत्त्वजालमुत्तरोत्तरमुद्भावयेदित्यर्थः । अत्र शिवशब्देन ज्ञानशक्तिरभिधीयते । ज्ञानशक्त्यधिष्ठितत्वात् शिवतत्त्वस्य शक्तिशब्देनापि क्रियाशक्तिरभिधीयते क्रियाशक्त्यधिष्ठितत्वाच्छक्तितत्वस्य चिदानन्दस्वरूपिण्याः सर्वत्र ज्ञानक्रियाभ्यामेव प्रपञ्चनिर्माणदर्शनात् । तथा श्वेताश्वरोपनिषदि- "यदिदं ते दृश्यते तदानन्दयोनिः तेन जीवति, तदेषाभ्युक्ता परो वा एष आनन्दः सभोगयोनिः, कामरूपावेतौ स आनन्दयोनिः आनन्दो ब्रह्म ब्रह्मैवैषा देवी एकानेकप्रपञ्चा स्यात् चतुर्थपौरुषार्थं आनन्दरूपेति" यथागमश्च—

यदा सा परमा शक्तिः स्वेच्छया विश्वरूपिणी ।
स्फुरत्तात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य संभवः ॥

प्रत्यभिज्ञासूत्रेऽपि—"चितिः स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः" इति ।

अभियुक्तोक्तिश्च—"सा योनिस्सर्वदेवानां शक्तीनां च" इत्यादि। एवं चार्थो वर्णयितव्यः । सव पराशक्तिः स्वयमेव शिवशक्तोभूय विश्वं सृजतीति तथा च श्रुतिः—"या लिङ्गमया निर्विततान हेतुर्याभ्यामिदं विश्वमादौ बभूव" इत्यादि द्रष्टव्या । तथा चिद्विलासे—"मेदिनीप्रमुखमाशिवं मतं तत्त्वचक्रमि ह चक्रमुत्तमम् । स्वस्वभावसमयावभासिनी देवता भवति सांविदी कला ॥ विसर्गशक्तीर्विश्वस्य कारणं च निरूपिता । ऐतरेयाख्यवेदान्ते परामर्शेन विस्तरात् ॥" इत्यभियुक्तोक्तिः । पुनस्तामेव विशिनष्टि—अणुतररूपानुत्तरविमर्शलिपिलक्ष्यविग्रहा भातीति—अणुतरमत्यन्तसूक्ष्मं रूपं अस्या इति अणुतररूपा । यजुश्श्रुतिः—

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरं नित्यं तत्त्वमेव त्वमेव तत् ।
यत्तदद्रेश्यमग्रह्याम् ॥ इत्यादि ।

"एष आत्मान्तरहृदयेऽणीयान्व्रीहिरूपाद्वा सर्षपाद्वा" इति ॥

तथा वचनमपि—

अणोरणुतरा देवी महतोऽपि महीयसी ।

अत्रेदं अतिरहस्यम्—अनुत्तरालिपिरकारः विमर्शलिपिर्हकारः । ताभ्यां लक्ष्यं विग्रहं स्वरूपं यस्याः सा तयोक्तम् । अत्रानुत्तरविमर्शलिपिलक्ष्यविग्रहेत्यनेनाहमात्मिकान्तर्गर्भितसस्तवर्णकदम्बकपरा वाक् अकारादिहकारान्तं पञ्चाशदक्षररूपिणी वर्णपदमन्त्रकलातत्त्वभुवनात्मकसमस्तप्रपञ्चजनयित्री पराभट्टारिका समस्तभूतान्तरात्मा सर्वत्र

वेदान्ते अहमहमित्येवमाकारेण प्रतीयमाना दृश्यत इत्युक्तं भवति । तथा बृहदारण्यके—"ब्रह्म च वा इदमग्र आसीत् । तदात्मानं एव वेद अहं ब्रह्मास्मि" इति । ऐतरेयेऽपि—"अ इति ब्रह्म तत्रागतमहम्" इति । तापनीयेऽपि—"कस्त्वमित्यहमिति होवाच । एवमेवेदं सर्वम् । तस्मादहमिति सर्वाभिधानम् तस्यादिरयमकारः । स एव भवति । सर्वंह्ययमात्मा । अयं हि सर्वान्तरात्मा न हीदं सर्वम् । निरात्मकमात्मैवेदं सर्वम् । तस्मात्सर्वात्मकेनाकारेण सर्वात्मकमात्मानमन्विच्छेद्ब्रह्मैवेदं सच्चिदानन्दरूपम्" इति । तत्रैवात्यत्र—"तद्वा एतद्ब्रह्म अद्वयं बृहत्वात् । नित्यं शुद्धं बुद्धं मुक्तं सत्यं सूक्ष्मं परिपूर्णं अद्वयं सच्चिदानन्दं चिन्मात्रमेव" इति परमात्मानमभिधाय तदुपासनाप्रकारमप्याह—"सुविभान्तं सकृद्विभान्तं पुरतोऽस्मात्सर्वस्मादविभान्तमद्वयं पश्यतो हंसस्सोऽहमिति । ब्रह्मभवति । य एवं वेद ।" इति रहस्यमिति ॥ पूर्णाहंभावभावनारूपमात्मोपासनमत्यन्तगोपनीयम् । गुरुमुखादेवावगन्तव्यमिति श्रुतिरेवाह—

यथा छान्दोग्ये षष्ठप्रपाठके "तदैक्षत सेयं देवतैक्षत" इत्यादिना । तेजोबन्नात्मकरूपत्रयां सर्वजगन्निर्मात्री त्रिपुरामभिधाय, "यो वै भूमा तत्सुखम् यत्र नान्यत्पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमा" इति । निरतिशयानन्दरूपिणीं तामेव निर्दिश्य, "स एवाधस्तात्" इत्युपक्रम्याहमात्मानं निर्दिशति ॥ "अहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिणतोऽहमुत्तरतोऽहमेवेदं सर्वमिति" इति । तथा बृहदारण्यके—"त्वं वा अहमस्मि भगवो देवतैतासां वै त्वमसि भगवोदेवता" इत्यादि । स्मृतिरपि—

ह्यकारं द्वादशान्ते हकारं स्थविरा विदुः ।
अहमात्मैकमद्वैतं यत्प्रकाशात्मविश्रमः ॥

अकारस्सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमशिवः ।
हकारोऽन्त्यः कलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः ।
उभयोस्सामरस्यं यत्परस्मिन्नहमि स्फुटम् ॥ इति ।

श्रीविरूपाक्षपञ्चाशिकायामपि—

स्वपरावभासनक्षम आत्मा विश्वस्य यः प्रकाशोऽसौ ।
अहमिति स एक उक्तो हन्ता स्थितिरीदृशी तस्य ॥

इत्यादिवचनसहस्रमनुसन्धेयमिति अलमतिविस्तरेण ।

इतः परं प्रबन्धेन प्रतिपाद्यां कामकलाक्षररूपिणीं विवेक्तुकामस्तदक्षरस्वरूपं वक्तुमुपक्रमते—

परशिवरविकरनिकरे प्रतिफलति विमर्शदर्पणे विशदे ।
प्रतिरुचिरुचिरे कुड्ये चित्तमये निविशते महाबिन्दुः ॥४॥

इत्यादिकला च दहनेन्दुविग्रहौ बिन्दू इत्यन्तं, परशिवः प्रकाशैकस्वभावः परशिवभट्टारक एव। रविर्दिनकरः, तस्य कराः किरणाः। तेषां निकरः पुञ्जः तस्मिन् विशदे निर्मले विमर्शदर्पणे विमर्शो नाम अनवधिकाकारविस्फुरणशक्तिः । तथा प्रत्यभिज्ञायाम्—'सा स्फुरत्ता' इत्यादि। सैव दर्पणत्वेन निरूप्यते। स्वस्वरूपप्रकाशत्वात्तत्र प्रतिफलनं नाम स्वरूपावलोकनम्। तादृशप्रतिफलनस्वरूपावलोकने सति चित्तमये ज्ञानैकस्वरूपे प्रतिरुचिरुचिरे प्रतिप्रकाशमनोहरे कुडचे महाबिन्दुर्निविशते प्रविष्टो भवति । चित्तस्य कुडचत्वनिरूपणमहाबिन्द्वाविर्भावकारणत्वात्। लोकेऽपि सूर्याभिमुखस्थितदर्पणतले सूर्य किरणप्रतिफलनानन्तरं निकटगतकुडचे सूर्यकिरणप्रतिहततेजोबिन्दुः प्रत्यक्षं प्रतिपद्यते । तद्वत्प्रकाशरूपपरमेश्वरस्य दर्पणवत् स्वस्वरूपविमर्शसम्बन्धे जाते तदानीं महाबिन्दुः पूर्णोऽहमित्येवं रूपः परमेश्वरोऽवभासत इत्यर्थः। तथा च छान्दोग्ये—"स देव सोम्येदमग्र आसीत्। एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म तदैक्षत सेयं देवतैक्षत इति च ब्रह्म वा इदमग्र आसीत् तदात्मानमेव वेदाहं ब्रह्मास्मीति स ईक्षत इमान् लोकन सृज।" इत्यादिश्रुतिषुस्वात्मशक्तिनिरीक्षाभिमुखं परब्रह्मं जगत्कारणमित्युच्यते। आगमश्च—

स्फुरत्तात्मनः पश्येत्तदा चक्रस्य संभवः । इति ।

प्रत्यभिज्ञायामपि—

सा स्फुरत्ता महासत्ता देशकालविशेषिणी ।
सैषा सारतया चोक्ता हृदये परमेष्ठिनः ॥ इति ।

परमानन्दयोगिनोऽपि—

ईदृगियत्तादिवचो दूरतरं स्वानुभूतिसंवेद्यम् ।
तत्तादृशस्फुरत्ताशेषं संवित्कथानुसाराख्यं ॥ इत्यादि ।

अन्यत्सर्वं शिवरूपविमर्शनिर्मलादर्श इत्यत्र प्रपञ्चितम् । तत्रैवावलोकितव्यमित्यलम् ।

तादृगुज्ज्वलात्मकशक्त्यवलोकनोद्भूताहंभावमेव विशिनष्टि—

चित्तमयोऽहङ्कारः सुव्यक्ताहार्णसमरसाकारः ।
शिवशक्तिमिथुनपिण्डः कबलीकृतभुवनमण्डलो जयति ॥५॥

अस्यार्थ— अहङ्कार इत्युद्भूतात्मस्मरणानुभवाभिव्यञ्जको योऽहमहमहमित्येवं विमर्शः । तस्य कारः कारणमहङ्कारः । एवं भूतोऽहङ्कारः जयति सर्वोत्कर्षेण वर्तते । तथोक्तं—

प्रकाशस्यात्मविश्रान्तिरहंभावेति कीर्तितः ।

चित्तमयो ज्ञानैकस्वभावः । सुव्यक्ताहार्णः समरसाकारः । अश्च हश्च अहौ । सुतरां व्यक्तौ सुव्यक्तौ स्पष्टौ । परस्परोद्भूतरूपौ सुव्यक्ताहौ । तयोस्समरसः एकलोलीभूतः । आकारः निजरूपं यस्य शिवप्रकाशः । शक्तिर्विमर्शश्च एतद्रूपमिथुनं दिव्यदम्पतिमयम् । पिण्डीभवति एकलोलीभवति । यत्र स शिवशक्तिमिथुनपिण्डः । अत एव कवलीकृतभुवनमण्डलः कवलीकृतं अन्तःस्थापितं भुवनमण्डलं षट्त्रिंशत्तत्वसंघातमयं येन सः ।

अयमर्थः—प्रत्याहारन्यायेन अन्तर्गर्भितसमस्तवर्णकदम्बकाहङ्काररूपप्रकाशविमर्शसंपुटादेव शब्दार्थात्मकसर्वप्रपञ्चविकासो भवति । तथा च श्रुतिः—"य एको वर्णो बहुधा शक्तियोगाद्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति ।" तापनीयेऽपि—"कस्त्वमित्यहमिति होवाच । अहमेवेदं सर्वम् । तस्मादेवाहमिति सर्वाभिधानमिति ।" कैवल्योपनिषदि—

उमासहायं परमेश्वरंविभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तम् ।
ध्यात्वा मुनिर्गच्छति भूतयोनिं समस्तसाक्षि तमसः परस्तात् ॥

"स ब्रह्मा स शिवः स हरिः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमस्स्वराट्" इत्युक्त्वा "तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते ।" इति कामकामेश्लरीरूपं ब्रह्म निर्दिश्य तदुपासनमप्यहं ब्रह्मात्मकमेव वदधाति। तत्रैवान्यत्र—

वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ।

इति अहमात्मकमेव ब्रह्मेति निर्दिश्यते । बृहदारण्यकेऽपि—"तद्वैतत्पश्यन् स ऋषिर्वामदेवः प्रतिपेदे अहं मनुरभवं सूर्यश्च" इत्यहंरूपमुपासनमभिधाय विपरीते बाधकमाह—"अथ योऽन्यां देवतामुपास्ते अन्योऽवसान्योऽहमस्मीति न स वेद यथा पशुरिति" तत्रैवान्यत्र—"यत्र देव इव राजेवाहमेवेदं सर्वोऽस्मीति मन्यते सोऽस्य परमो लोकः" इति । "त्वं वा अहमस्मीति भगवो देवते अहं वै तत्वमसि" इत्यादि तथा गीताभाष्ये—

उत्सृज्य स्वयमात्मानं ये ध्यायन्त्यन्यदेवताम् ।
भिक्षित्वा भूरि वित्तास्ते भिक्षित्वापि बुभुक्षिताः ॥ इति ।

विरूपाक्षपञ्चाशिकायामपि—"यस्य विमर्शस्य वर्णः पदमन्त्रार्णात्मकस्त्रिधा शब्दः । भुवनकलातत्वार्थो धर्मिण इत्थंप्रकाशस्य ॥ अहमेकोऽनस्तमितप्रकाशरूपोऽस्मि तेजसान्तमसामिति तथा अहमिति स एक उक्तोऽहन्तास्थितिरीदृशी तस्य" इति । रहस्यागमेऽपि—

पूर्णाहन्तात्मभावेन कृत्रिमाहन्तया विना ।
आत्मानमात्मना साक्षाद्यः पश्यति स पश्यति ॥५॥

इतः परतरं द्वाभ्यां चित्तमये निविशते महाबिन्दुः, इत्युक्तं बिन्दुस्वरूपनिरूपणद्वारा कामकलामुपदिशति—

सितशोणबिन्दुयुगलं विविक्तशिवशक्तिसंकुचत्प्रसरम् ।
वागर्थसृष्टिहेतुः परस्परानुप्रविष्ट विस्पष्टम् ॥६॥

बिन्दुरहङ्कारात्मा रविरेतन्मिथुनसमरसाकारः ।
कामः कमनीयतया कला च दहनेन्दुविग्रहौ बिन्दू ॥७॥

इति सितः शुभ्रः शोणो रक्तः तद्रूपौ बिन्दू तयोर्युगलम् । अत एव विविक्तशिवशक्ति अन्योन्यविहरणशीले शिवशक्ती यस्मिन् कर्मणि तत् । अत एव संकुचत्प्रसरं संकुचन्मुकुलीभवन् प्रसरः जगत्सृष्टिरूपो विकासो यस्मिन् तत् । वाचः परापश्यन्त्यादिरूपसमस्तशब्दार्थाः शिवादिक्षित्यन्तषट्त्रिंशत्तत्वरूपाः तेषां सृष्टि षडध्वात्मकजगन्निर्मितिः । तत्र हेतुः कारणम् । तथा सौभाग्यहृदये—

वर्णः कला पदं तत्वं मन्त्रो भुवनमेव च ।
इत्यध्वषट्कं देवेशि भाति त्वयि चिदात्मनि ॥

परस्परानुप्रविष्टविस्पष्टं परस्परं अन्योन्यं अनुप्रविष्टमन्तर्गतम् । विस्पष्टं पृथग्भूतं च तत् । एवंभूतं सितशोणबिन्दुयुगलं कामकामेश्वरीरूपं दिव्यमिथुनं विभावयेदिति पूर्वेण सम्बन्धः । अत्रेदमतिरहस्यम्—"यः परस्स महेश्वरः" इति श्रुत्युक्तरीत्या निखिलवेदादिशब्दोत्पादकोऽनुत्तराक्षराभिधेयः परमेश्वरः स्वात्मभूताखिलप्रपञ्चनिलयात्मकविमर्शशक्तिमनुप्रविश्य विन्दुभावमयते । ततः सा विमर्श शक्तिरपि स्वान्तर्गत प्रकाशमय विन्दुमनुप्रविशति । ततश्च बिन्दुरुच्छूनो भवति तस्माद्विन्दोर्नादात्मिका समस्ततत्वगर्भिणी तेजोमयी नीवाराग्रसूक्ष्मरूपिणी निर्गत्य शृङ्गाररूपतामुद्वहते एवं च बिन्दुनाद-

स्वरूपयोः तयोः प्रकाशविमर्शयोरहमिति शरीरं भवति । एवं द्विरूपयोस्तयोर्मध्ये एको विमर्शो रक्तबिन्दुरूपं भजते अपरः प्रकाशः शुक्लबिन्दुभावमेति। उभयोर्मेलने मिश्ररूपं सर्वतेजोमयं परमात्मस्वरूपं भवति। तथा रहस्याम्नाये प्रकाशविमर्श संवादचन्द्रचन्द्रिकाख्यप्रकरणे अयमर्थः सम्यक् निरणायि —

"प्रसीद भगवन् शम्भो ममात्मोपासनं प्रति ।
यो यो भवति सन्देहः तं भवान्वक्तुमर्हसि ॥
आत्मानुसन्धयात्मानं परात्मीकृतरूपिणः ।
भगवन् यः परानन्दः स कथं वद मे प्रभो ॥"
इति पृष्टवतीं देवीं प्रत्याह परमेश्वरः ।
सकलाधारभूतो यः समस्तस्योपरि स्थितः ।
तस्मिन्नात्मनि सन्धाय स्वात्मानं परमं व्रजेत् ॥
आवयोर्जगदात्मत्वात्तादात्म्यादावयोरपि ।
आत्मोपासनमानन्दं सर्वेषां विद्धि जानताम् ॥
तादात्म्यादावयोर्नित्यं जगत्प्राणावुभौ हि नौ ।
ज्ञात्वैतान्सकलान्सम्यग्जानीयात्संविदं पराम्" ॥

विमर्श—

आवयोरपि तादात्म्यं कथं योगोऽपि संभवेत् ।
कर्मसाम्यं कथं केन निराचारावधूतकौ ॥

इत्यादि प्रश्नपञ्चकस्योत्तरमाह शिवः—

"शिवकामात्परं तत्वं वर्ण्यते इति चेच्छृणु ।
सचोदयः प्रिये वक्तुं नालं वाग्विषयातिगम् ॥

पार्णाख्यशिवेच्छायां सत्यां सा विमर्शा तदा ।
अजायत परार्णाख्या बीजादङ्कुरवत्प्रिये ।
अनुप्रविश्यतां शक्ति वामाद्यैः पिण्डितो भवेत् ॥

समस्तबीजगर्भाढ्यः सूक्ष्मबिन्दुत्वमेति सः ।
तत्प्रविश्याम्बिका भूत्वा सानन्दाकारतां गता ॥

तद्व्याप्त्या जृम्भिता तस्माद्बिन्दुरुच्छूनतां गतः ।
तथा सा बिन्दुमुद्भिद्य नीवाराग्रवदुत्थिता ॥

तुल्यकालोदिता नित्यरश्मिकोटिविडम्बिनी ।
षट्त्रिंशत्तत्वगर्भाढ्या परमाद्यर्णगर्भिणी ॥

सा पुंभावपरं बिन्दुं प्रविश्य ध्वनितां गता ।
सोऽपि नादात्मिकां शक्तियोनिमेति स्वशक्तिताम् ।
तयोर्विभेदयोरेको रक्तोऽन्यश्शुक्लतां गतः ।
मध्यबिन्दुविमिश्रं तत्सुषुम्नाकन्दखात्मकम् ॥"

इत्यादिना बिन्दुत्रयनिरूपणं कृतम् । तदिह प्रसङ्गात् किञ्चिदुक्तम् । अन्यत्सर्वं गुरुमुखादेवावगन्तव्यम् । श्रुतिरपि— 'एको वर्णो बहुधा शक्तियोगात्' इत्यादि । एतदेव बिन्दुत्रयनिरूपणं विवृणोति—बिन्दुरहङ्कारात्मेति—बिन्दुः उक्तस्वरूपः । अहङ्कार अन्तर्गर्भितसमस्तवर्णराशिरनुत्तरास्फाररूपाकारहकारतादात्म्यं स्वरूपं यस्य सः । वर्णात्कार इति सूत्रेण अहं शब्दात् कारप्रत्ययः । एकार इतिवत् । अतएव एतन्मिथुनसमरसाकारः एतयोरकारहकारवाच्ययोः प्रकाशविमर्शयोः । मिथुनं द्वन्द्वम् तस्य दिव्यदम्पतिरूपस्य मिथुनस्य । समरसः परस्परानुप्रविश्यमानमानुकूल्य तदेवाकारः स्वरूपं यस्य सः । एवं भूतो रविः । सितशोणबिन्दुसमरसीभूतो मिश्रबिन्दुरित्यर्थः । लोकेऽपि सूर्यस्य मिश्ररूपत्वं अग्नीषोमयोः प्रवेनिर्गमश्रवणादेवं वर्णयति —

"तथा उद्यन्तं वा वादित्यमग्निरनुसमारोहति। अग्निं वा वादित्यः सायं प्रविशति" इति श्रुतेः। अमा सह सूर्याचन्द्रमसावस्यां तिथौ तिष्ठत इत्यमाशब्दव्युत्पत्त्या चन्द्रसूर्ययोः प्रवेशनिर्गमने प्रसिद्धे तस्माद्रविर्मिश्र बिन्दुरेवात एव तस्योपास्यत्वमाह—काम इति—काम्यते इत्यभिलष्यते स्वात्मत्वेन परमार्थविद्भिः महद्भिः योगिभिरिति कामः तत्र हेतुः कमनीयतयेति कमनीयत्वम्। तथा चोपनिषदि—"हिरण्यश्मश्रुः हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्ण" इति। ईशावास्येऽपि—

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरंशुद्धमपापविद्धम्। इति।

तथा तत्रैव—"यत्ते रूपं कल्याणतमं तत्ते पश्यामि योऽसावसौ पुरुषस्सोहमस्मि" इति। महासुन्दरं कामेश्वरमभिधाय तादृशमहिमानं परामृशति।

रहस्याम्नाये—

निरुत्तरं निराधारं सच्चिदानन्दसागरम्।
यदेतच्छाम्भवं निर्वाणधारतां गतम्॥ इत्यादि।

कलाविमर्शशक्तिः: दहनो वह्निः। इन्दुः चन्द्र। तावेव विग्रहावाकारौ ययोर्बिन्द्वोः तौ दहनेन्दुविग्रहौ बिन्दू। अयमर्थः—अग्नीषोमरूपिणी विमर्शशक्तिः। तदुभयभूतकामेश्वरा विनाभूत महात्रिपुरसुन्दरी बिन्दुसमष्टिरूपा कामकलेत्युच्यते। सैवोपास्यतया सर्वागमेषु च उद्घोष्यते। तथा हि—

शुक्रः शिवो रक्तशक्त्यां पराशाम्भववेधतः।
रक्तशाम्भवरूपेण परातत्वेन शक्तितः॥
रक्तः शिवः शुक्लशक्त्यां परशम्भवैक्यभावतः।
रक्तः शिवः शुक्लशक्त्यां सच्चिदानंदलक्षणम्॥ इति।

अन्यवापि—

अग्रबिन्दुपरिकल्पिताननामन्यबिन्दुरचितस्तनद्वयीम् ।
नादबिन्दुरशनागुणास्पदां नौमि ते परशिवे परां कलाम् ॥
मिहिरबिन्दुमुखीं तदधोल्लसच्छशिहुताशनबिन्दुयुगस्तनीम् ।
सहपरार्धकलारशनास्पदां भजति नित्यमिमां परदेवताम् ॥
ईकारोर्ध्वगतो बिन्दुर्मुखं भानुरधोगतौ ।
स्तनौ दहनशीतांशू योनिहार्द्धकला भवेत् ॥ इति रहस्यम् ॥

अयमत्र निष्कर्षः—स्वान्तर्गतानन्ताक्षरराशिमहामन्त्रमयी पूर्णाहन्तामयी प्रकाशानन्दसारा बिन्दुत्रयसमष्टिभूतदिव्याक्षररूपिणी कामकला नाम महात्रिपुरसुन्दरी मातृकापरमयोगिभिर्महामहेश्वरैरनिशमनुस्मर्तव्येति । एवंभूतमाहात्म्यं ब्रह्मोपनिषदि च प्रतिपाद्यते । यथा—"अथास्य पुरुषस्य चत्वारि स्थानानि भवन्ति । नाभिर्हृदयं कण्ठं मूर्धा च । तत्र चतुष्पादं ब्रह्म विभाति । जागरिते ब्रह्मा स्वप्ने विष्णुः सुषुप्तौ रुद्रः । तुरीयमक्षरम् । स आदित्यो विष्णुश्चेश्वरश्च । स्वयमनस्कमश्रोत्रमपाणिपादं ज्योतिर्विदितम् ।" अस्यार्थः—अस्य एषदेवस्य संप्रसादोऽन्तर्यामिखग इत्यादि । पूर्वतनवाक्यजालैर्निर्णीतार्थकस्य पुरुषस्य चत्वारि स्थानानि मूलाधारहृदयकण्ठदेशोत्तमाङ्गरूपाणि भवन्ति । तेषु चतुर्षु स्थानेषु चतुष्पादं चतुर्विशचरणं ब्रह्म सर्वव्यापनशीलं शुभ्रं स्वच्छप्रकाशम् । अक्षरं न क्षरतीति व्युत्पत्त्या जगदुत्पत्तिकारणत्वान्मूलकारणभूतं विभाति ।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।

इति निरवधिकतेजोमयं सत् विद्योतत इत्यर्थः । एवंभूताक्षरस्य स्थानदेशेषु उपदेशद्वारा अवयस्वरूपमुक्त्वा तुरीयं समुदायरूपं परमाक्षरबिन्दुद्वादशान्ते कामकलात्मकं परं ज्योतिर्मयमिति व्याचष्टे-'तुरीयमक्षरमिति'–स आदित्य इत्यारभ्य स ईश्वरो जाग्रदित्यन्तमंतरम् ।

आदित्यः प्रकाशरूपः विष्णुः व्यापनशीलः। प्राणः जीवः सर्वजीवनदायकः। पुरुषः सर्वजीवतिजीवः प्राणादिरूपी। अग्निरग्रनेता। एवं भूतस्स ईश्वरः विमर्शाख्यकामेश्वरीयुक्तः परमशिव इत्यर्थः। तथा चोक्तमथर्वशिरसि—"अथ कस्मादुच्यते ईशान इत्युक्त्वा स्वयमेव व्याचष्टे। यस्सर्वान् भावान् ईशत ईशनीभिः परमशक्तिभिः" इति। तथान्यत्र—"परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानवलक्रिया च।" इति। एवं भूतः कामेश्वरः तुर्याक्षररूपः। जागर्ति जाग्रतीत्यर्थं। व्यत्ययो बहुलमिति सूत्रेण सुप्तिङ् व्यत्ययविधानात्। अत्र जागरणं नाम परापश्यन्तीमध्यमावैखरीमयमातृकाचक्रात्मिकाश्रीचक्रप्रथममध्यभूतसर्वानन्दमयाख्येनिरवधिकतेजोमण्डलभवने।

वैन्दवानलसंरूढं संवर्तानलचिद्घनम्।
कामेश्वराङ्कपर्यङ्कनिविष्टमतिसुन्दरम्॥

इत्युक्तरीत्या प्रकाशानन्दनाथरूपत्वम्। एतदभिप्रायेण लीलाविनोदनोद्युक्त इत्यनेन जागरूक इति व्याख्यातम्। तत्तादृगक्षरं ज्योतिर्मयं निष्कलमित्याचष्टे—तेषां मध्ये इत्यादिना—तेषां आधारहृदयकण्ठप्रदेशोत्तमाङ्गरूपस्थानविशेषोपासनाक्लृप्तावयवाक्षराणां मध्ये यत्परं तुरीयभूतमक्षरं ब्रह्म निर्वाणाख्यम्। विभाति विद्योतते। एवं भूतनिष्कलमित्याह—अच्छायमपवनमित्यादिनापरमप्रकृतिमक्षरं निरूपयति ज्योतिर्विदितमिति। वन्दे ज्योतिरनुत्तरमित्यादिना प्रकाशात्मकत्वादेव ज्योतिर्मयत्वं विदितं सर्ववेदान्तैर्वेदितमित्यर्थः। पुनरपि ज्योतिर्मयमक्षरं ब्रह्म सर्वात्मकं सर्वेश्वरं निर्वाणरूपमिति स्वयमेव श्रुतिः स्पष्टमाचष्टे। यथा "यत्र लोका न लोका देवा न देवा वेदा न वेदा यज्ञा न यज्ञा माता न माता पिता न पिता स्नुषा न स्नुषा चण्डालो न चण्डालः पुल्कसो न पुल्कसः श्रमणो न श्रमणः तापसो न तापसः। एकमेवेत्परं ब्रह्म विभाति।" इति सर्वात्मकं ब्रह्मनिर्दिश्य 'हृद्याकाशे तद्विज्ञान' मित्यारभ्य 'स विभुः प्रजासुध्यानेन यो वेदेति' उपासनास्वरूपमुक्त्वा पुनरप्याह—तत्परं ब्रह्म विभाति। निर्वाणं न तत्र देवा

ऋषयः पितर ईशते प्रतिबुध्यः सर्वविद्येति । अन्यत्र च—दृश्यतेत्यन्यया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः । इत्यादि श्रुत्या परमार्थविद्भिस्तादृशमक्षरं सम्यगवगम्यते । तथा चतुश्शत्यां द्वादशश्लोक्याम्—

यदक्षरमहासूत्र प्रोतमेतज्जगत्त्रयम् ।
ब्रह्माण्डादिकटाहान्तम् जगदद्यापि दृश्यते ॥ इति ।

यदक्षरशशिज्योत्स्नांमण्डितं भुवनत्रयम् ।
यदक्षरैकमात्रेण संसिद्धचै स्पर्धते नरः ॥

रविताक्ष्र्येन्दुकन्दर्पशङ्करानलविष्णुभिः ।
वन्दे ताहक्षय्यां मातृकाक्षररूपिणीम् ॥ इति ।

प्रत्यभिज्ञायां च—

सर्वदात्वन्तरानन्दः सर्वतत्वौघनिर्भरः ।
शिवश्चिदानन्दघनः परमाक्षरविग्रहः ॥ इति ।

तथा—

स्वात्मैव सर्वजन्तूनामेक एव महेश्वरः ।
चित्स्वरूपोऽहमहमित्यखण्डामर्शबृंहितः ॥ इति ।

यथा स्वच्छन्दे 'तदूर्ध्वेचोन्मना स्मृता' इत्युपक्रम्य—

नात्र कालः कलाभावो नैकता न च देवता ।
सुनिर्वाणं परं शुद्धं रुद्रवक्त्रं तदुच्यते ॥

शिवशक्तिरिति ख्यातं निर्विकल्पं निरञ्जनम् ।
पश्यातीतं वरारोहे वाङ्मनोऽतीतमद्भुतम् ॥

अनिष्कलं च सकलं नीरूपं निर्विकल्पकम् ।
निर्द्वन्द्वं परमं तत्वं शिवाख्यं परमं पदम् ।। इति ।

विज्ञानभैरवभट्टारकेऽपि बिन्दुरूपस्य चक्रस्य स्थूलवर्णक्रमेण तु अर्धेन्दुबिन्दुनादान्तं शून्योच्चारात् भवेच्छिवा ।। इत्यादि ।

अमृतानन्दयोगिनश्च—

"बैन्दवे परमाकाशे सच्चिदानन्दलक्षणे
निष्प्रपञ्चे निराभासे निर्विकल्पे निरामये ।।
अनुत्तरचमत्कारपरामर्शपवित्रिते ।
निरुत्तरमहाशून्ये शून्यशून्यान्तवर्जिते ।।
स्त्रीपुंनपुंसकाख्याभिः कल्पनाभिरकल्पिते ।
आदिमध्यांतनिर्मुक्ते भावपञ्चकभासिते ।
सर्वोपमानरहिते प्रकाशानुभवात्मिके ।। इति ।

शिवानन्दस्वामिनोऽपि—

सकलाद्या स्थिते हृद्ये कामराजकलात्मिके ।
बिन्दुनादकलाकारे नमस्त्रिपुरसुन्दरि ।।

वयमपि चिदानन्दवासनायाम्—

चतुरण्डमहारत्नमण्डितं विश्वविग्रहम् ।
क्षित्यादिशिवपर्यन्तं व्याप्यावस्थाचतुष्टयम् ।।
पिण्डं विभाव्य तन्मध्ये सर्वातीतघनां पराम् ।
तुर्यातीतां चिदानन्दरससारामनुत्तराम् ।।

तत्रापि स्वेच्छयोपात्तजागरादिदशां पराम् ।
अशेषसंविदामन्तर्मुखविश्रान्तिरूपिणीम् ॥
अनन्तकोटिचन्द्रार्कसन्निभां षोडशाधिकाम् ।
स्वान्तर्गतैकतापन्नषट्त्रिंशत्तत्त्वसञ्चयाम् ।
सर्वोत्तीर्णां महाबिन्दुरूपामाराधयाम्यहम् ॥

एवमादिकं श्रुतिस्मृतिजालमनुसन्धेयम् ।

एवं बिन्दुस्वरूपमुपदिश्य तद्ज्ञानोपासनयोः फलं परब्रह्मभाव एवेत्याह—

इति कामकला विद्या देवीचक्रमात्मिका सेयम् ।
विदिता येन स मुक्तो भवति महात्रिपुरसुंदरीरूपः ॥८॥

पूर्वोक्तमहाप्रबन्धेन व्याख्याता कामकला महात्रिपुरसुन्दरी । तस्याः विद्या ज्ञानं सा कीदृशीत्याकाङ्क्षायामाह—देवीचक्रक्रमात्मिकां देव्याः त्रिपुरसुन्दर्याः चक्रं श्रीचक्रम् । तस्य क्रमः चक्रमन्त्रदेवतात्मना सर्वानन्दमयादिसमस्तप्रकटपर्यन्तरूपः । तदात्मिका तद्विषयिणी । येन शक्तिपातात्समुन्मिषद्ब्रह्मजिज्ञासुना भाग्यवता विद्यावता पुरुषेण विदिता । गुरूपसदनादिनावगता स पुरुषो मुक्तो भवति । "इहापि विद्याभिर्ज्ञापितैश्वर्यश्चिद्घनो मुक्त एव सः ।" इति प्रत्यभिज्ञास्थित्या संसारवासनानिरसनपटीयाननवरतपरिपूर्णाहंभावभावनाकबलीकृतसर्वप्रपञ्चः परमयोगी विहरते । तथा बृहदारण्यके—तदाहुः—"यद्ब्रह्मविद्यया सर्वं भविष्यन्तो मनुष्या मन्यते । किमु तत्र ब्रह्मावेद्यस्स्यात्तत्सर्वं भवति । अन्तेऽपि महात्रिपुरसुन्दरीरूपो भवति पराभट्टारिकात्मकरूपो भवति ।" तथा च श्रुतिः—"परं धाम त्रैपुरं चाविशन्ति ।" इति । "ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति । स एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं जानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दस्स एव भवति" इति । प्रयाभिज्ञासूत्रे च तथा —

"प्रकाशानन्दसारमन्त्रविद्यात्मकपूर्णाहंभाववशात् सर्वसंहाराधिकारी निजसंविद्देवता चक्रेश्वरताप्राप्तिर्भवति इति ।" शिवमिति । अभिनवगुप्तपादाश्च—

यस्यैषां प्रतिभायेतत्परार्थक्रमरूपिता ।
अक्रमानन्दचिद्रूपः प्रमोदात्स महेश्वरः ॥ इति ।

स्वतन्त्रशिवतिचक्राणां चक्रवर्ती महेश्वरः ।
संवित्तिदेवता चक्रजुष्टः कोऽपि जयत्यसौ ॥ इति ।

स्वछन्दशास्त्रे—

यदा त्वेकत्र संरूढस्तदा तस्य लयोदयौ ।
नियच्छन् भोक्तृतामेति ततश्चक्रेश्वरो भवेत् ॥

इत्यादिवचनशतं द्रष्टव्यम्। एवं च विदिता येन स मुक्त इत्यादिना ज्ञानपूर्वानुष्ठानमेव ब्रह्म प्रापकं इत्युक्तम् ॥ तथा बृहदारण्यके—"यो वा एतदक्षरं गार्ग्य विदित्वाऽस्मिन् लोके जुहोति यजते तपस्तप्यते बहूनि वर्षसहस्राण्यन्तवदेवास्य तद्भवति" इति । तथा च वामकेश्वरतन्त्रे -

यावदेतं न जानाति सङ्केतत्रयमुत्तमम् ।
न तावत्त्रिपुरा चक्रे परमाज्ञाधरो भवेत् ॥ इति ।

तस्माज्ज्ञानपूर्वानुष्ठानेनैव परमशिवो भवति । तथा चोक्तं तत्रैव—"एतदज्ञात्वावरारोहे सद्यः खेचरतां व्रजेत् ।" इत्यलं प्रसक्तानुप्रसक्त्या । पुण्यानन्दमुखेन्दोरुदितामानन्ददायिनीमेताम् । कामकलामहमनिशं मूर्ध्ना वाचा वहामि चित्तेन ।

इति कामकला व्याख्या नटनानन्देन देशिकप्रीत्यै । रचिता रसिकजनानां पुंसामालोकनाय चिद्वल्ली । तेषामन्यतमोऽयं टीकामेनां चकार तत्प्रीत्यै । अस्या कामकलायाः व्याख्या पूर्वैरुदाहृताऽनेका । अस्मिन् तथापि स भक्त्या नटनानन्दोऽपि भावयामास । पुण्यानन्द-महात्मा कामकलारूपबिन्दुमुक्त्यैवम् बिन्दोर्विकसनरूपं श्रीचक्रं नाम वक्तुमुद्युङ्क्ते । तत्क्रमविवरणरूपं श्रीकामकलाविलासमप्येषः । आरभते विवरीतुं गुरुपदकृपयैव सुन्दरीभक्तः ।

इह महामहेश्वराः पुण्यानन्दाः कामकलाख्यां सुन्दरी आदिमात्म-त्वेनानुभूय पुनरपि मन्त्रचक्रदेवतात्मकाद्विलासानुभवपराः सन्तः परमार्थ-भूतप्रकृतमहाबिन्दोरेव सकाशात् जगदुत्पत्त्यादिकं वक्तुमारभते—

स्फुटितादरुणाद्बिन्दोर्नादब्रह्माङ्कुरो रवो व्यक्तः ।
तस्माद्गगनसमीरणदहनोदकभूमिवर्णसंभूतिः ॥९॥
अथ विशदादपि बिन्दोर्गगनानिलवह्निवारिभूमिजनिः ।
एतत्पञ्चकविकृतिर्जगदिदमण्वाद्यजाण्डपर्यन्तम् ॥१०॥

स्फुटितादरुणाद्बिन्दोरिति—स्फुटितात् उच्छूनात् । बिन्दोः पूर्वोक्त-लक्षणात् नादब्रह्माङ्कुरः । नादः सर्वशब्दोत्पत्तिहेतुर्वर्णः । स एव ब्रह्म तद्ब्रह्माङ्कुरः उत्पादकं यस्य सः । तथा चोक्तम्—

एको नादात्मको वर्णः सर्वनादविभागवान् ।
सोऽनस्तमितरूपत्वादनाहत इतीरितः ॥ इति ।

उपनिषदपि—"ध्याता रुद्रः प्राणं मनसि सहकरणैर्नादान्ते परमात्मनि संप्रतिष्ठाप्य ध्यायीतेशानम्" इति । दीपिकानन्दश्च—व्यामेति बिन्दुरिति नाद इति एवंभूतो नादब्रह्माङ्कुरो रवः शब्द पश्यन्त्यादिरूपः व्यक्तः आविर्भूतः । उत्तरत्र यासान्तरोहरूपेत्यादिशब्द-राशेः परापश्यन्त्यादिशक्तित्वेन प्रतिपादनात् । तस्माच्छब्दात् गगन-

समीरणदहनोदकभूमीनां पञ्चभूतानां वर्णानामादिक्षान्ताक्षराणां च। संभूतिरुत्पत्तिः आम्नाता। अयमर्थः—स नादबिन्दोरेव सर्वप्रपञ्चनिष्पत्तिराम्नायते। तत्तस्माच्छब्दात्मकं परं ब्रह्मेति।

ननु आत्मन आकाशस्संभूतः इत्यादिना आत्मन एव स आकाशाज्जगदुत्पत्तिः श्रूयते। तत्कथं बिन्दुनादात्मकशब्दब्रह्मण एवेति। उच्यते– सर्वत्र वेदान्तेषु बिन्दुनादात्मकविद्याक्षरादेव परापश्यन्त्यादिशब्दात्मकसर्वप्रपञ्चाविर्भावदर्शनात्। तथा च श्रुतिः—"अक्षरात्संभवतीह विश्वम्। यदक्षरं भूतकृतं विश्वेदेवा उपासते।" उपनिषदन्तरेऽपि—"दिव्ये ब्रह्मपुरे विरजं निष्कलं शुभ्रमक्षरं विभाति" इति। कामराजबीजान्तर्गतककारलकाररहिताबिन्दुत्रयसमष्टिभूतकामकला—क्षरस्वरूपं विभातीति। ज्योतिर्मयत्वमुक्त्वा जडातेऽपि? तत्परं ब्रह्म विभातीति परमप्रकृताक्षरब्रह्मणः ज्योतिर्मयत्वमुक्त्वा उपदिश्य तत्स्वरूपं निगमयति। मिश्रबिन्दोर्निर्वाणबिन्दोर्विश्रमादक्षरात्मकमेव ब्रह्मोपनिषदादावाचष्टे। इममेवार्थमभिप्रेत्य लघुभट्टारिका अपि—

"यन्नित्ये तव कामराजपरं मन्त्राक्षरं निष्कलं"

इति श्लोके कामकलाक्षरस्य सर्ववेदमूलत्वेन सर्वप्रकारेण सर्वपुरुषोस्यत्वं मोक्षप्रदत्वं चाब्रुवन्। तद्व्याख्यातृभिरपि कृष्णानन्दवर्यैः—यदीं शृणोत्यलकं शृणोति न हि प्रवेदसुकृतस्य पन्थाम्" इत्यादि श्रुतिजालमुपन्यस्य श्रीकामकलाक्षरस्वरूपवैभवमेवोपन्यतस्तम्।

प्राञ्चोऽपि कवयः—

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दमक्षरसंज्ञितम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥ इति।

अक्षरब्रह्मण एव सकाशाज्जगदुत्पत्तिं ब्रुवन्ति। तथा—शब्दानां जननीत्वमत्र भुवने वाग्वादिनीत्युच्यते। इत्यमृतरूपी। स्मृतिरपि—

शब्दब्रह्ममयी स्वच्छा देवी त्रिपुरसुंदरी ॥ इति ।

एवं शब्दस्य निष्पत्तिः । शब्दव्याप्तं चराचरमित्यादि । तथा च आत्मन आकाश इत्यात्मशब्दस्य अक्षरात्मपरत्वमित्यविवादः । एवं शोणबिन्दोः सर्वात्मकत्वं सर्वसृष्टृत्वमुक्त्वा एतदभेदाच्छुभ्रबिन्दोरपि तत्स्वरूपमतिदिशति—अथ विशदादिति—विशदात्सर्वप्रकाशात् । बिन्दोः पूर्वव्याख्यातात् । गगनादिपञ्चभूतात्मकानन्तब्रह्माण्डाविर्भावतिरोभावौ भवत इत्यर्थः । तथा च श्रुतिः —

यस्मिन्भावाः प्रलीयन्ते लीनाश्च व्यक्ततां ययुः ।
पुनश्चाव्यक्ततां भूयो जायन्ते बुद्बुदा इव ॥ इति ।
एतस्माज्जायते प्राणो मनस्सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥

एवं रक्तशुक्लबिन्दुमयप्रकाशविमर्शात्मकब्रह्मणः सर्वं सृज्यत इति सिद्धम् । स्वेच्छाविलासितान्तजगद्रश्मिवितानवत् । नौमि संविन्महापीठं शिवशक्तिपदाश्रयम् । इति ।

एवं बिन्दुद्वयाभेदमुक्त्वा मंत्रदेवतयोरप्यैक्यमाह—

बिन्दुद्वितयं यद्वद्भेदविहीनं परस्परं तद्वत् ।
विद्यादैवतयोरपि न भेदलेशोऽस्ति वेद्यवेदकयोः ॥११॥

बिन्दुद्वितयं पूर्वोक्तप्रकाशविमर्शात्मकं । यद्वत् येन प्रकारेण भेदविहीनं "शिवशक्तिरिति ह्येकं तत्त्वमाहुर्मनीषिणः ।" इत्युक्तरीत्या परस्पराश्लिष्टं तद्वत् तेनैव प्रकारेण विद्यादेवतयोः विद्या पञ्चदशाक्षरी । देवता महात्रिपुरसुन्दरी तयोर्वेद्यवेदकयोः वाच्यवाच्यकयोर्भेदलेशोऽपि ईषद्वैलक्षण्यमपि नास्ति । तथापि ऋग्वेदशाखान्तर्गतसाङ्ख्यायन शाखायाम्—

कामो योनिः कमला वज्रपाणिः गुहाहसामातरिश्वाभ्रमिन्द्रः ।
पुनर्गुहा सकलामायया च पुरुच्येषा विश्वमातादिविद्या ॥

"षष्ठं सप्तममथह्निसारथिमस्यामूलत्रिकमादेशयन्त ।" इत्यादिना कादिहादिविद्याद्वयमुद्धृत्य तस्य देवतैक्यमाह—विश्वमातादिविद्येति । वृहदारण्डयकेऽपि—"योऽयं दक्षिणेक्षन् पुरुषः । तस्य भूरितिशिरः । "एकं शिरः एकमेतदक्षरं भुव" इति । बाहू द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे स्वमिति प्रतिष्ठाद्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे तस्योपनिषदहमिति "हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेद ।" इति । अक्षिस्थाननिष्ठस्य पुरुषस्य भूराद्यवयवं निर्दिश्य तस्याक्षरस्य अहमात्मकब्रह्मभावमादिश्य सकलपापनिवृत्तिपुरस्सरं साम्राज्यं ब्रूते । ततश्च सकलविद्यानां सकलवेदादिशब्दाद्याविर्भावकारणाऽहंभावरूपादिमातृकात्मकत्वत् उभयोरभेद इत्यत्र न विवादः ।

तथा श्री तन्त्रसद्भावे —

सर्वे वर्णात्मका मन्त्रा ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये ।
शक्तिस्तु मातृका ज्ञेया सा च ज्ञेया शिवात्मिका ॥
या सा तु मातृकालोके परतेजस्समन्विता ।
तया व्याप्तमिदं सर्वं आब्रह्मभुवनात्मकम् ॥ इति ।
संविदितं विदितं संविन्मयमेव भवति संवेद्यम् ।
अग्नाववाहुतमाहुतमग्निमयं किं न जायते काष्ठम् ॥

क्रोधभट्टारकोऽपि—"पञ्चाशन्निजदेहजाक्षरभवैः" इत्याद्युक्त्वा "विश्वं व्याप्य निजात्मनाहमहमित्युज्जुम्भसे मातृके" इति मन्त्रदेव तयोरैक्यमुक्तवान् । श्लोकार्थस्संपूर्णः ॥

एवमभिन्ननादबिन्दु मिथुनादखिलं जगदाविर्भवतीति वक्तुं तदेव मिथुनमात्मेच्छैवस्वभेदमकरोदित्याह ।

वागर्थौ नित्ययुतौ परस्परं शक्तिशिवमयावेतौ ।
सृष्टिस्थितिलयभेदौ त्रिधा विभक्तौ त्रिबीजरूपेण ॥१२॥

अस्यार्थः—वागर्थौ वाक् वर्णपदमन्त्ररूपा । अर्थः कला तत्वभुवनात्मा । अत एव तद्रूपौ कुतः प्रकाशविमर्शात्मकशब्दार्थाभ्यामेव षडध्वात्मकसर्वप्रपञ्चोत्पत्तिश्रवणात् । तथा श्री विरूपाक्षपञ्चाशिकायाम्—"यस्य विमर्शस्य कणः पदमन्त्रार्णात्मकस्त्रिधा शब्दः । धर्मिण इत्थं प्रकाशस्य ।" इति ॥ अत एव नित्ययुतौ निरन्तरसंसक्तौ । न हि घटपटयोरिव कादाचित्कः सम्बन्धः । तथा सति सर्वानुपपत्तिप्रसङ्गात् । सृष्टिस्थितलयभेदौ सृष्टिः शिवादिक्षित्यन्ततत्वजालाविर्भावः । स्थितिः तत्परिपालनम् । लयः तेषां स्वात्मसाक्षात्कारः एवंभूतो भेदो ययोस्तौ । स्वात्मोत्पन्नत्वात् तेषां त्रयाणां भेदात् । तथा च अभिनवगुप्ताः—

स्वात्मना सृष्टिसंहारस्वरूपत्वेन संस्थितः । इति ।

परस्परं शक्तिशिवमयौ प्रकाशविमर्शस्वरूपौ । उभयोरेकक्तृत्वात् वह्निदाहकवत् । तत्त्वान्तरं न भवतीत्यर्थः । तथागमश्च—"आवयोर्जगदात्मत्वात् तादात्म्यं चावयोरपि ।" इत्यादि । अभियुक्तोक्तिश्च—"तादात्म्यमनयोस्सिद्धं वह्निदाहकयोरिति । एतौ पूर्वोक्तौ प्रकाशविमर्शौ त्रिधात्रिप्रकारेण विभक्तौ पृथग्भूतौ केनेत्यतआह - त्रिबीजरूपेणेति—वाग्भवकामराजशक्तिबीजात्मनेत्यर्थः । अयमर्थः—बिन्दुत्रयसमष्टिभूतकामकलाक्षररूपिणी वाग्भवादिबीजात्मिका महात्रिपुरसुन्दरी सर्वोपास्येति । तथा चोक्तं वामकेश्वरतन्त्रे—

तत्वत्रयविनिर्दिष्टवर्णशक्तित्रयात्मिका ।
वागीश्वरी ज्ञानशक्तिर्वाग्भवा मोक्षरूपिणी ॥

कामराजी कामकला कामरूपक्रियात्मिका ।
शक्तिबीजे पराशक्तिरिच्छैव ज्ञानरूपिणी ॥

एवं देवी त्र्यक्षरात्मा महात्रिपुरसुंदरी ।
पारम्पर्येण विज्ञाता भवबन्धविमोचिनी ॥ इति ।

इतः परं वाग्भवादिखण्डत्रयान्तर्गतवस्तुविशेषवर्णनद्वारा श्रीपञ्चदशाक्षरीविद्यामुद्धर्तुमुपक्रमते—

माता मानं मेयं बिन्दुत्रयभिन्नबीजरूपाणि ।
धामत्रयपीठत्रय–शक्तित्रयभेदभावितान्यपि च ॥१३॥
तेषु क्रमेण लिङ्ग-त्रितयं तद्वच्च मातृकात्रितयम् ।
इत्थं त्रितयपुरी या तुरीयपीठादिभेदिनी विद्या ॥१४॥

माता अवगन्ता महेश्वरः । मानं तदवगतिसाधनभूताविद्या । मेयं ज्ञायमाना महात्रिपुरसुन्दरी एतानि ज्ञातृज्ञानज्ञेयरूपाणि— बिन्दुत्रयभिन्नबीजरूपाणीति—बिन्दूनां पूर्वोक्तानां त्रितयं बिन्दुत्रितयं रक्तशुक्लमिश्ररूपं तदात्मना भिन्नं पृथग्भूतम् । यद्बीजं सर्वसमष्टिभूतनिर्वाणाख्यम् । तद्रूपाणि तत्प्रकाशकानि । अयमर्थः—सर्वातीतचिदानन्दघनात्मानुभवरूपाहम्भावशालिनी परं ज्योतिरेव मातृमानमेयभावमनुभूय विहरति ।

तथा बृहदारण्यके—आत्मैवेदमग्र आसीत् सोऽन्वीक्ष्य नान्यदात्मनोऽपश्यत् । सोहमस्मीत्यग्रे व्याहरत् । ततोऽहं नामा अभवत् । तस्मादप्येतर्ह्यामन्त्रितोऽहमय मित्येवाग्र उक्त्वान्यन्नाम ब्रूत" इति । अस्यार्थः—आत्मा परमेश्वर एव । इदं परिदृश्यमानं जगत् अग्रे प्रथमं आसीत् । स्वान्तर्गत प्रपञ्चोऽभवदित्यर्थः । तथा स परमात्मा अन्वीक्ष्य स्वात्मसात्कृतप्रपञ्चात्मत्वेनालोक्य अन्यदात्मनो नापश्यत्स्वव्यतिरिक्तं किञ्चिदपि नाद्रक्ष्यत् । स्वेनैव सर्वेषां कबली करणात् । तस्मिन् समये अखण्डसच्चिदानन्दघनात्मानुरूपं स्वसाधारणरूपमस्मि भवामि इति प्रदर्शयन्नग्रे सृष्टेः पूर्वं व्याहरत् प्रादर्शयत् । तत एवाहं नामाभवत् । ब्रह्मण एव स्वस्वरूपप्रदर्शनात् । अहमित्येव हि ब्रह्मनामधेयम् । तस्मादिहापि श्लोके आमन्त्रितः कस्त्वमिति केनचित्पृष्टः । अहमित्येव ब्रह्मस्वरूपमुक्त्वा अन्यन्नामधेयादिकम् पश्चात् ब्रूते । ततश्च सर्वत्र

स्वस्वरूपावलोकनद्वारा ब्रह्मण एव ज्ञातृत्वादिभेदप्रतिपादितोऽभवदित्यर्थः । तथा चतुश्शत्याम्—

अतीतं तु परं तेजः स्वसंविदुदयात्मकम् ।
स्वेच्छाविश्वमयोल्लेखखचितं विश्वरूपकम् ॥
चैतन्यमात्मनो रूपं निसर्गानन्दसुंदरम् ।
मेयमातृप्रमामानप्रसरैः संकुचत्प्रभम् ॥ इति ।

प्रत्यभिज्ञायामपि—

अखण्डितस्वभावोऽपि विचित्रां मातृकल्पनाम् ।
स्वहृन्मण्डलचक्रे यः पृथक् चेत्तं नुमशिशवम् ॥

धामत्रयं नाम सोमसूर्याग्निमण्डलत्रयम् । बीजत्रयं वाग्भवादिकम् । पीठत्रयं कामगिर्यादिकम् । शक्तित्रयमिच्छादि । एवमादिभेदेन भावितानि महाबिन्दुमयत्वादे तेषु धामादिषु त्रिभेदभिन्नेषु क्रमेणानुपूर्व्या लिङ्गत्रितयं स्वयम्भुवादिमातृकात्रितयं अकथादिभेदभिन्नम् । एवंविधसमस्तवस्तुपूरणात्समष्टिरूपा त्रिपुरा नाम पराशक्तिराविर्भूतेत्याह – इत्थं त्रितयपुरी या इति—इत्थं पूर्वोक्तप्रकारेण त्रितयानि त्रयसंख्यानि पुराणि शरीराणि यस्यास्सा । अत एव तुरीयपीठा त्रिविधात्मकसर्वप्रपञ्चाविर्भावतिरोभावभूमिरित्यर्थः । तथा चोक्तम्—"मातृकां पीठरूपिणीम्" इति । स्वच्छन्दे विभाविताऽपि च ।

सुबालोपनिषदि च—"आनन्दमेवास्तमेति उदेति तुरीयमेवाप्येति । यत्तुतुर्यमेव तदेतदमृतं अभयमशोकमनन्तं निर्बीजमप्येति इतिहोवाच । एवंविधतुरीयपीठादिभेदिनी स्वात्मन्येव स्वेच्छया उद्भावितानन्ततत्वकदम्बिनी अखण्डसंविदात्मिका । तथा चोक्तम्—

त्रिमूर्तिसर्गाच्च पुरोभवाच्च त्रयीमयत्वाच्च पुरोऽपि देव्याः ।
अयं त्रिलोकीमयपूरणाच्च प्रायोऽम्बिकायास्त्रिपुरेति नाम ॥ इति ।

स्वसंवित् त्रिपुरा देवी इति। स्वातन्त्र्योल्लासिताशेषतत्वप्रोतस्वरूपिणी। आद्यै रग्निरबीन्दुबिम्बनिलयैरित्यादि। इतः परं तस्माद्गगनसमीरणदहनोदकभूमिवर्णसंभूतिरिति।

प्रथमसृष्टपञ्चभूतनिष्ठं गुणवर्णनद्वारा अक्षरसङ्ख्या विशिष्टमहामन्त्रात्मकदेवतास्वरूपं वक्तुमारभते।

शब्दस्पर्शौ रूपं रसगन्धौ चेति भूतसूक्ष्माणि।
व्यापकमाद्यं व्याप्यं तूत्तरमेवं क्रमेण पञ्चदश ॥१५॥

पञ्चदशाक्षररूपा नित्या चैषा हि भौतिकाभिमता।
नित्याशशब्दादिगुणप्रभेदभिन्नास्तथानया व्याप्ताः ॥१६॥

नित्यास्तिथ्याकाराः तिथयशिवशक्तिसमरसाकाराः।
दिवसनिशामय्यस्ताः श्रीवर्णास्तेऽपि तद्द्वयीरूपाः ॥१७॥

अस्यार्थः—शब्दः आकाशगुणः। स्पर्शः वायुगुणः। रूपं तेजोगुणः। रसो वारिगुणः। गन्धः पृथिवीगुणः। एते गुणा आकाशमारभ्य पृथिवीपर्यन्तमुत्तरोत्तरमेकैकगुणाधिक्येन पञ्चदशगुणाः संपद्यन्ते। एतेषां गुणानां पञ्चदशभावेन श्रीविद्या पञ्चदशाक्षरो जाता ॥ तत्स्वरूपिणी चेयमाविर्भूतेत्याह—पञ्चदशाक्षररूपेति— भौतिकामितता भूतसंबन्धेनाभिमता इष्टा। अत एव पञ्चदशाक्षररूपास्वात्मन आविर्भूतगुणानां पञ्चदशात्मकत्वात्। विद्याक्षराणामपि पञ्चदशत्वम्। तद्रूपा तत्स्वरूपिणी नित्या कूटस्था तरङ्गबुद्बुदफेनानामम्बुधिरिव सकलतत्वाविर्भावभूमिरित्यर्थः। तथा बृहदारण्यके—"इदं महद्भूतमनन्तमपारं विज्ञानघनएवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविशति" इति ॥ मुण्डकोपनिषदि च—"यस्मिन् भावाः प्रलीयन्ते" इति ॥ शिवानन्दाश्च—

शिवादिक्षितिपर्यन्तं षट् त्रिंशत्तत्त्वसंचयाः।
यस्योर्मिबुद्बुदाभावास्तं वन्दे चिन्महोदधिम् ॥

इति कूटस्थाया एव षोडश्याः पञ्चदशावयवात्मकपञ्चदशतिथिनिष्ठिता पञ्चदशदेवतामयपञ्चदशाक्षरीरूपतामाह—नित्यास्तिथ्याकारा इति—नित्याः कामेश्वरीप्रभृतिचित्रान्ताः। तिथ्याकाराः तिथ्यभिमानिन्यो देवताः। तिथयश्च प्रतिपत्प्रभृति पूर्णिमान्ताः। शिवशक्तिसमरसाकाराः प्रकाशविमर्शसंपुटाकाराः। अत एव दिवसनिशामय्यः दिवारात्रिरूपाः। प्रकाशविमर्शयोः दिवारात्रिमयत्वात्। तथा चोक्तम् चिद्विलासे – "सा निशा सकललोकमोहिनी वासरस्स खलु सर्वबोधकः।" इति तास्तिथयः श्रीवर्णाः। तेऽपि ते पूर्वोक्तरूपेण पञ्चदशरूपाः। श्रीवर्णाः विद्यान्तर्गतवर्णगणाः। अपि तन्मयीरूपाः तादृशप्रकाशविमर्शरूपा इत्यर्थः। इयं च पञ्चदशाक्षरी ऋग्वेदे साङ्ख्यायनशाखायामाम्नाता। यथा, "कामोयोनिः कमला"इत्यादि। तस्मिन्नेव वेदेऽन्यत्र—"चत्वार ई विभ्रति क्षेमयन्ते"—इत्यादावपीयं विद्या विद्योतत इति वर्णयन्ति केचित्।

अयमत्र विवेकः—इयमेव प्रकाशविमर्शमयी पराशक्तिः पञ्चभूतात्मिका उत्तरोत्तरगुणवृद्धिद्वारा पञ्चदशसङ्ख्याकमन्त्राक्षरतिथ्याभिमानिनी देवतास्वरूपिणी जाता। तथा यथागमः—

एक एव प्रकाशाख्यः परः कोऽपि महेश्वरः।
यस्य शक्तिर्विमर्शाख्या सा नित्या गीयते बुधैः॥
विमर्शाख्या च सा देवी पाञ्चविध्यं समागता।
आकाशानिलसप्तार्चिस्सलिलावनिभेदतः ॥
एकैकगुणवृद्ध्या तु तिथिसङ्ख्यात्वमागता।
विमर्शरूपिणी नित्या षोडशी या प्रकीर्तिता॥
गता सा षोडशैर्भेदैस्त्रिपुरा परमेश्वरी।
सुन्दर्यादिमहापूर्वं विचित्रान्तं समन्ततः॥
आगमादेव बोद्धव्यमिति सङ्केतमात्रतः।
प्रतिपत्प्रभृतौ देव्याः पौर्णमास्यन्तिकं प्रिये॥
एकैकं पूजयेद्यस्तु स सौभाग्यमवाप्नुयात्॥

सुभगोदयवासनायामपि—"खं वायुर्ज्योतिरब्भूमिशब्दादिगुणभेदतः दशपञ्चतया व्यापिकाः पूजयाम्यहम् ॥" इति ।

इतः परं विद्यादैवतयोरपि न भेदलेशोऽस्ति वेद्यवेदकयोरिति उक्तमेवार्थं दृढयितुं देवतावद्विद्याया अपि विश्वात्मकत्वात्तदुत्तीर्णत्वं व्यक्तमाह ।

अज्व्यञ्जनबिन्दुत्रय समष्टिभेदैर्विभाविताकारा ।
षट्त्रिंशत्तत्वात्मा तत्वातीता च केवला विद्या ॥१८॥
विद्यापि तादृगात्मा सूक्ष्मा सा त्रिपुरसुन्दरी देवी ।
विद्यावेद्यात्मकयो–रत्यन्ताभेदमामनन्त्यार्याः ॥१९॥

अज्व्यञ्जन इति अचः । स्वराः । व्यञ्जनानि हलः । बिन्दुत्रयं अनुस्वारत्रयम् । एषां समष्टिः समुदायभावः । भेदोऽवयवभावः । तैर्विभाविताकारा उद्भावितस्वरूपा । अत एव षट्त्रिंशत्तत्त्वात्माशिवादिक्षित्यन्ततत्वविग्रहा तत्वातीता च । तत्वसंघसमुदायस्थानत्वात्तदुत्तीर्णा च । अत एव केवला स्वव्यतिरिक्तस्याभावादेकाकिनी । एवंभूता विद्या श्रीपञ्चदशाक्षरीत्यर्थः । अयमत्र विद्याया अवयव विभागः प्रकारः । इह पुण्यानन्दाः हादिविद्यायामत्यन्ताभिमानिनः अस्या एव विद्याया अवयवसमुदायभावमाश्रित्य तत्वात्मकत्वं तदुत्तीर्णत्वमाचक्षते । अत्र वाग्भवाख्ये प्रथमखण्डे पञ्चस्वराः सप्तव्यञ्जनानि संहत्य द्वादशवर्णाः । कामराजाख्ये द्वितीयखण्डे षट्स्वराः अष्टव्यञ्जनानि संभूय चतुर्दशवर्णाः । शक्त्याख्ये तृतीयखण्डे चत्वारः स्वराः षट् व्यञ्जनानि संहत्य दशवर्णाः । सर्वेऽपि संभूय षट्त्रिंशदक्षराणि । केचित्तु—प्रथमखण्डे षट्स्वराः षट्व्यञ्जनानि । द्वितीयखण्डे सप्तस्वराः सप्तव्यञ्जनानि । तृतीयखण्डे पञ्चस्वराः पञ्चव्यञ्जनानि इति व्यवह्रियन्ते । अवयवरूपाणि समुदायरूपा विद्या सर्वतत्वातिक्रान्तावधिवर्तिनी ।

ननु कादिविद्यैव उभयात्मिका सर्वत्र प्रसिद्धा श्रूयते । कामो योनिः कमलेत्यादौ आदिः ब्रह्मा द्वितीया वाणीत्यादौ तत्कथं हादिविद्यैव उभयात्मिकेत्युच्यते । सत्यम् । कादिविद्या तु कामो योनिरित्याद्युपनिषदि

प्रथमतः प्रतिपाद्यते । तथापि हादिविद्यापि तत्रैवोद्धृता । कथं षष्ठं सप्तममथ वाह्निसारथिमस्या मूलत्रिकमावेशयन्त इत्यादिना । तस्मात् हादिविद्यापि श्रुतिप्रसिद्धैव । तस्मात्तस्या हादिविद्याया एव उभयात्मकत्वमितीह वर्णितमित्येवावगन्तव्यम् ।

ननु तर्हि कादिविद्याया अपि उभयात्मकत्वाभावे तस्यामुपादेयबुद्धिर्न स्यात् । कुतः देवतावैजात्यात् । तत्कथं हादेरेवो भयात्मकत्वं प्रतिपाद्यते । अत्रोच्यते—न वयं हादिविद्यैव तादृशी न कादिरिति वदामः । किन्तु हादिरेवाभिप्रेता । न कादिरित्येतावन्मात्रमुक्तम् । अन्यत्र तथा व्याख्यानात् । कादेरपि विद्याया उभयात्मकत्वमस्त्येव । इयानेवानयोर्विद्ययोर्भेदः – हादौ प्रथमखण्डे षट्स्वराः षट्व्यञ्जनानि । कादौ प्रथमखण्डे सप्तस्वराः पञ्चव्यञ्जनानि । संहत्य विद्याद्वयेऽपि प्रथमखण्डे द्वादशवर्णत्वं समानम् । तस्मादुभयात्मकत्वमुभयोर्विद्ययोरस्त्येव । तदुभयविद्योपासनाप्रकारस्तु गुरुमुखादेवावगन्तव्यः । देवताया अपि मन्त्रवदुभयात्मकत्वमिति—मन्त्रदैवतयोरैक्यमाह—विद्यापि तादृगात्मेति – विद्या चिदानन्दस्वरूपिणी । तादृगात्मा विश्वात्मिका । तदुत्तीर्णा च । सूक्ष्मा परिच्छेत्तुमशक्या । सा सर्ववेदान्तेषु प्रसिद्धा । त्रिपुरसुन्दरी त्रिपुरा च सुन्दरी च त्रिधावस्थितसमस्तवस्तुपूरणात् सर्वयोगिभिरुपास्यत्वेन स्पृहणीयत्वाच्च त्रिपुराशब्दनिर्वचनं च पूर्वमेव प्रपञ्चितम् । देवीस्वच्छप्रकाशरूप विश्वविसर्जनादिक्रीडारूपा परा वाग्विद्यात्मकयोः पञ्चदशाक्षरीत्रिपुरसुन्दर्योरत्यन्ताभेदमामनन्त्यार्याः । सार्वकालिकैक्यमामनन्ति सर्वत्र प्रतिपादयन्ति । आर्याः परमेश्वरप्रमुखाः परमयोगिन इत्यर्थः ।

तथा चिदम्बररहस्ये—

अहं पञ्चाक्षरस्साक्षात् त्वं तु पञ्चदशाक्षरी ।

चतुश्शत्यां च –

यस्य यस्य पदार्थस्य या या शक्तिरुदाहृता ।
सा सा सर्वेश्वरी देवी स सर्वोऽपि महेश्वरः ॥

व्याप्ता पञ्चदशार्णैषा विद्याभूतगुणात्मिका ।
पञ्चभिश्च तथा षड्भिश्चतुर्भिरपि चाक्षरैः ॥
स्वरव्यञ्जनभेदेन सप्तत्रिंशत्प्रभेदिनी ॥
सप्तत्रिंशत्प्रभेदेन षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपिणी ।
तत्त्वातीतस्वरूपा च विद्यैषा भाव्यते सदा ॥ इति ।

रहस्योपनिषदि चेयं विद्या सम्यक् प्रतिपाद्यते । यथा—"देवाह वै प्रजापतिमब्रुवन्, केयं तनुः किं रूपा कियद्वर्णा किं करोति किं ददाति केन बा सिध्यति किं करवाम" इति देवैः पृष्टः प्रजापतिः प्रत्युत्तरमाह । "नेदृशो लोकातीतोऽचिन्त्यो वाच्य इत्यादिना सर्वोत्तमत्वं पञ्चदशाक्षर्याः प्रतिपाद्य श्री पञ्चदशाक्षरीमेव देवेभ्य उपदिशति । यथा तदुदाहरिष्यामः । आदिरादिब्रह्मा द्वितीया वाणी तृतीयो मारः ततो महेन्द्रः इयं भूवाच्यधर्मसन्तानमयमिति द्वितीयमुदाहरिष्यामः । आदिरादिरुद्रः ततः सुधामयम् । ततः प्रजानामीशः ततो हंसः । ततो भूमिः) ततोऽयमात्मा अयं भुवो नामार्थसन्तानं भोगानन्दमयमिति । तृतीयमुदाहरिष्यामः । आदौ जीवनेशस्ततः विश्वकृद्धाता । ततो जगन्माता लक्ष्मीः । ततो पराशक्तिः स्वर्णमेदं नाम चिन्तामणिं भावाभावमयम् इति । अत्रायं प्रथमः पादः इति प्रथमखण्डमुपदिशति । द्वितीयखण्डमुदाहरिष्याम इति द्वितीयखण्डमुपदिशति । तृतीयमुदाहरिष्याम इति तृतीयखण्डञ्चोपदिशति । उपदिश्य सर्वमपि तन्मन्त्रमाहात्म्यमाह—सानेकधा समभवत् । तदेतन्महामनुरिति सैव शब्दतनुरेषा । सर्ववर्णरूपा परमा त्रिपदा त्रयीभावा । त्रिगुणा त्रिवर्गरूपा नित्या निर्मला निरवद्या निष्प्रपञ्चात्मविद्याविभुः । परविद्या इति य एवं वेद विद्वान् भवति । अथाहुर्विद्वांस इति रहो रहस्यमिति । शिवोऽयं शिवोऽयं शिवोऽयमिति । स एव इमानि भूतानि संसृजति रक्षति संहरति । अन्यथाकरोति अणुर्महत्कृशस्थूलं ह्रस्वदीर्घं व्याप्तो व्यापकः श्रीभूतेशो वन्द्यो भवति । य एवं वेद सैव सो भवति इति । अस्याः श्रुतेरर्थः । संप्रदायादेवावगन्तव्य इति न लिख्यते ।

रससारसंग्रहेऽपि हादिविद्योद्धार उक्तः। तत्र वचनानि कानिचिल्लिख्यन्ते—

विद्या तु नवमीं सम्यक् प्रवक्ष्यामि समासतः।
ललिता या महादेव्या मादनेत्यादितः क्रमात् ॥
मादनः प्राणरूपस्तु विकासः शिव उच्यते।
सकारस्त्वपरो ज्ञेयः सङ्कोचः शक्तिरूपकः ॥
सङ्कोचः परमा शक्तिर्विकासः परमशिवः।
संङ्कोचश्च विकासश्च हंस इत्यक्षरद्वयम् ॥
तयोराधाररूपेण कर्त्तव्यं बिन्दुमालिनी।
प्राणो बिन्दुरिति प्रोक्तस्साहचर्यादपानके ॥
अथोधरेन्द्रमाकाशं ज्वलनं तु तयोरधः।
मायाबिन्दूर्ध्वगा चैव वाग्भवो नाम कीर्तितः ॥

श्रीहंसपरमेश्वरे—

मा शक्तिस्तु समाख्यातादनस्वीकारकः शिवः।
स हि मादन इत्युक्तो हकारशिवसंज्ञकः ॥
तस्य शक्तिर्ययोर्ध्वत्वे सकारस्स विधीयते।
शिवो हकार इत्युक्तः सकारश्शक्तिरव्यया ॥
बिन्दुमालिनिकार्णस्य पर्यायं परमेश्वरम्।
शक्रव्योमानलार्णाय मायाबिन्द्वीश्वरादयः ॥
यथास्थिताश्च तत्तथ्या वाग्भवं सनिलानिलः ॥

द्वावन्यौ कामशक्त्याख्या वर्णौ निष्कलकात्मकौ। इत्यादिदृष्टव्यम्। श्रीक्रोधभट्टारकोऽपि।

इत्थं त्रीण्यपि मूलवाग्भवमहाश्रीकामराजस्फुर्-
च्छक्तयाख्यानि चतुःश्रुतिप्रकटितान्युत्कृष्टकूटानि ते ।
भूतर्तुश्रुतिसङ्ख्यवर्णविदितान्यारवतकान्ते शिवे,
यो जानाति स एव सर्वजगतां सृष्टिस्थितिध्वंसकृत् ॥

अत्रश्रुति—

चत्वारि वाक्परिमितापदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।
गुहात्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥
इत्यादिश्रुतिरप्यनुसन्धेया ।

एवं विद्यादेवतयोरप्यभेदमुक्त्वा चक्रदेवतयोरैक्यं वक्तुं चक्रोत्पत्तिप्रकारमाह—

यासान्तरोहरूपा परा महेशी त्रिभाविताकारा ।
स्पष्टा पश्यन्त्यादि त्रिमातृकात्मा च चक्रतां याता ॥२०॥
चक्रस्यापि महेश्या न भेदलेशोऽपि भाव्यते विबुधैः ।
अनयोस्सूक्ष्माकारा परैव सा स्थूलयोश्च कापि भिदा ॥२१॥

अस्यार्थः—यासान्तरोहरूपा अन्तरमन्तःकरणम् । तस्मिन् ऊहः वितर्कः । इत्थमिति परिच्छेदरहितः । तेन सहितं रूपं यस्मास्सा । अयमर्थ—अवाङ्मनसगोचरा सर्ववेदान्तैरपरिच्छेद्या सर्वकारणभूता शिवादिधरण्यन्ततत्वसङ्घाताविर्भावभूमिः महेश्वरी परा सर्वोत्कृष्टेत्युच्यते । यजुश्श्रुतिः । "परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते ।" इति । "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह । आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् ।" इति । यथागमश्च—

स्वरूपज्योतिरेवान्तपरावागनपायिनी ।
यस्यां दृष्टस्वरूपायामधिकारो निवर्तते ॥ इति ।

लघुभट्टारकश्च—

सा त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिः परागीयते ॥ इति ।

एवं भूतलक्षणा सैव पराशक्तिरेव। त्रिभाविता त्रिप्रकारत्वेन भाविता सञ्जातभावना। एतदेवाह—स्पष्टा पश्यन्त्यादित्रिमातृका सेति – स्पष्टा प्रथमोत्पन्नत्वेन विवक्षिता विषयिणी पश्यन्तीत्युच्यते। आदिशब्देन मध्यमा वैखरी। सैव वैखरी नाम अभिलपनरूपिणी पञ्चदशाक्षरराशिमयी सर्ववैदिकतान्त्रिकशब्दजालात्मिका शक्तिरुच्यते। तथोक्तं सुभगोदयवासनायाम्—

परा भूजन्मपश्यन्ती वल्ली गुच्छसमुद्भवा।
मध्यमा सौरभा वैखर्यक्षमाला जयत्यसौ॥

अस्मदुक्तचिदानन्दवासनायामपि—

विवक्षाव्यवसायोक्तिरूपा एतास्त्रिमातरः।
पश्यन्त्यादिमहादेव्या स्वरूपा नात्र संशयः॥ इति।

एवंरूपा त्रिमातृकात्मिका। सैव चक्रतां याता। त्रिखण्डात्मकचक्रैक्यमित्यादीत्यर्थः। तदेवाह—चक्रस्य त्रैलोक्यमोहनादिसर्वानन्दमयबैन्दवान्नवावरणात्मकस्य सुन्दर्याधिष्ठानभूतस्य महेश्याः तदाधिष्ठात्र्याः सुन्दर्याश्च भेदलेशः ईषद्भेदोऽपि बुधैर्विशेषज्ञैः न भाव्यते नानुभूयते। कुतः श्रीसुन्दरीस्वरूपत्वात् श्रीचक्रस्य। तथ चोपनिषत्—"महत्तरा महिमा देवतानां नवयोनिर्नवचक्राणि दीधिरे। नवैव योगाः नवयोगिनीश्च नवानां चक्राणां अधिनाथस्योनानवमुद्रानवभद्रामहीनां एका आसीत्। प्रथमा सा नवाऽसीत्।" इत्यादि।

वामकेश्वरतन्त्रे –

तच्छक्तिपञ्चकं सृष्ट्या लयेनाग्निचतुष्टयम्।
पञ्चशक्तिचतुर्वह्निसंयोगाच्चक्रसंभवः॥
एतच्चक्रावतारं तु कथयामि वरानने।
यथा सा परमा शक्तिः॥ इति उपक्रम्य—
"चक्रं कामकलारूपप्रसारपरमार्थः।"
इत्यन्तेन सम्यक् अभेदः प्रतिपादितः॥

"चक्रं कामकलारूपसारपरमार्थः।" इत्यन्तेन सम्यक् अभेदः प्रतिपादितः॥

क्रोधभट्टारकोऽपि—

श्रीचक्रं श्रुतिमूलकोशमथितं संसारचक्रात्मकम् । इत्यादि ।

पुनरपि तादृग्भेदमेतयोर्व्याचष्टे—अनयोस्सूक्ष्माकारेत्यादिना अनयोः सूक्ष्मरूपयोश्चक्रदेवतयोस्सूक्ष्मरूपत्वं नामापरिछिन्नत्वमेव । तत्र श्रीचक्रस्य सूक्ष्मरूपेणावस्थानं बिन्द्वात्मना बिन्दोः परिच्छिन्नत्वं बैन्दवे परमाकाशे इत्यादिना प्रपञ्चितमेव। देवताया अपि विद्यापि तादृगात्मेत्यादिना अभिहितमेवं तथा स्थूलयोश्चक्रदेवतयोश्च । अत्र स्थूलत्वं नाम चक्रस्य त्रिकोणादिचतुरस्रपर्यन्तविजृम्भणम् । देवाताया अपि त्रिपुराम्बिकादि त्रिपुराशक्त्यन्तरूपेण मननम् । एवंविद्ययोश्चक्र-देवतयोः भिदाभेदकरणाभावादित्यर्थः । तत्र हेतुमाह—सा परैवसूक्ष्मा-कारा इति—सा पूर्वोक्तलक्षणा । परैव आदिशक्तिरेव । सूक्ष्माकारा सूक्ष्मभूतः आकारः स्वरूपं अनयोरित्यर्थः ।

तथा चोक्तं चतुश्शत्याम्—

स्थूलसूक्ष्मविभेदेन त्रैलोक्योत्पत्तिमातृका । इति ।

अत एव हेतोरीषद्भेदोऽपि विद्वद्भिर्नानुभूयते । एवमेव हि विद्या-चिन्तनं सर्वत्र । तथा च श्रुति—"सर्वं खल्विदं ब्रह्मेति । सर्वं तं परादाद्योन्यत्रात्मनः सर्वं वेद" इति उत्तरत्र ग्रन्थकारोऽपि वक्ति । सेयं परा महेशी चक्राकारेण परिणमेत यदेति देवतारूपत्वं चक्रस्य ।

इतः परं परापश्यन्त्यादिशक्तिविकासरूपं नवयोन्यात्मकं श्रीचक्रं वक्तुमादौ बैन्दवं सर्वानन्दमयाख्यचक्रं पराशक्तिमयमित्याह ।

मध्ये चक्रस्य स्यात् परामयं विन्दुतत्वमेवेदम् ।
उच्छूनं तच्च यदा त्रिकोणरूपेण परिणतं स्पष्टम् ॥२२॥
एतत्पश्यन्त्यादित्रितयनिदानं त्रिबीजरूपं च ।
वामाज्येष्ठारौद्री चाम्बिकयानुत्तरांशभूताः स्युः ॥२३॥

चक्रस्य नवयोन्यात्मकस्य मध्यं मध्येभवं बिन्दुतत्वं बिन्दुस्वरूपं पूर्वोक्तमेव व्याख्यातम् । इदं स्वसाक्षात्कृतं परामयमेव परशक्तिस्व-

रूपमित्यर्थः । तथा चोक्तम्–"प्रसृतं विश्वलहरी स्थानं मातृत्रयात्मकम् । बैन्दवं चक्रम् ।" इति । तत्रैव—

सूक्ष्मरूपं समस्तार्णा व्रतं परमलिङ्गकम् ।
बिन्दुरूपं परानन्दकन्दमित्यपरोदितम् ।। इति ।

तथा बिन्दुर्विमर्शधर्मः षण्णामेकोऽध्वनां प्राण इति । विरूपाक्षपञ्चाशिकायां एतदेव बिन्दुतत्वं यदा विकासभावमयते तदा त्रिकोणचक्रमुदेतीत्याह—उच्छूनं तच्च यदा इति—यदाऽस्मिन् काले प्राणिनामदृष्टवशादुच्छूनं तच्च बैन्दवमपि उच्छूनं संजातविकासं भवति तदा त्रिकोणरूपेण अनुत्तरानन्देच्छाश्रृङ्गाररूपेण परिणतं त्रिकोणाकारं भवतीत्यर्थः । तथा चोक्तं श्रीत्रिशिकाशास्त्रे—

अनुत्तरानन्दचितिरिच्छा शक्तौ नियोजिता ।
त्रिकोणमिति तत्प्राहुर्विसर्गानन्दसुन्दरम् ।।
मेयमातृप्रमामानप्रसरैः सङ्कुचत्प्रभम् ।
श्रृङ्गाररूपमापन्नमिच्छाज्ञानक्रियात्मकम् ।। इति ।

श्रृङ्गाररूपं त्रिकोणमित्यर्थः । एतत्त्रिकोणं चक्रं पश्यन्त्यादित्रितयनिदानं पश्यन्तीमध्यमावैखरीप्रमुखशक्तित्रयोत्पत्तिकारणमित्यर्थः । तथा सुभगोदयवासनायामपि—"इच्छादिशक्तित्रितयं पशोस्सत्वादिसंज्ञकम् । महत्र्यश्रं भावयामि गुरुवक्रादनुत्तरम् ।" इति ।

प्रत्यभिज्ञायामपि—

स्वाङ्गरूपेषु भावेषु सत्वज्ञानक्रियेच्छया ।
माया तृतीयते एव पशोस्सत्वरजस्तमः ।। इति ।

इच्छाज्ञानक्रियाशक्तयः एव पश्यन्त्यादिशक्तित्रितयतामापान्नः । तथा हि—

इच्छाशक्तिस्तथा वामा पश्यन्ती वपुषा स्थिता ।
ज्ञानशक्तिस्तथा ज्येष्ठा मध्यमा वागुदीरिता ।।

ऋजुरेखामयी विश्वस्थितौ प्रथितविग्रहा ।
तत्संहृति दशायां तु बैन्दवं रूपमास्थिता ॥
प्रत्यावृत्तिक्रमेणैव शृङ्गारवपुरुज्ज्वला ।
क्रियाशक्ति रौद्रीयं वैखरी विश्वविग्रहा ॥ इति ।

श्रीतन्त्रसद्भावेऽपि—

या सा तु मातृका लोके परतेजस्समन्विता ।
तया व्याप्तमिदं सर्वमाब्रह्मभुवनान्तरम् ॥

"इत्यारभ्य, एकैवं त्रिधा सा तु प्रजायते" इत्यन्तेन पराशक्त्याः पश्यन्त्यादिशक्तिजालनिरूपणं कृतम् । तत्त्रैवावधार्यम् । इह तु ग्रन्थविस्तरभयान्न लिख्यते—त्रिबीजरूपञ्चेति—त्रिबीजानि त्रिखण्डात्मकवाग्भवकामराजशक्तिबीजानि । तेषां बीजानां स्वरूपं यस्य तत् । तथा च श्रुतिः—"तिस्रः पुरस्त्रिपथा विश्वचर्षिणीः यत्राकथा अक्षरास्सन्निविष्टाः अधिष्ठायैना अजरा पुराणि महत्तरामहिमादेवानाम् ।" इत्यादिना सर्वमन्त्राविर्भावहेतुभूतत्रिखण्डात्मकमातृकाधिष्ठानकारणदिव्यशृङ्गारपीठमाह । वामकेश्वरतन्त्रेऽपि—

बीजत्रितययुक्तस्य सकलस्य मनोः पुनः ।
एतानि वाच्यरूपाणि कुलकौलमयानि तु ॥ इति ।

बीजत्रितयशक्तित्रितयलिङ्गत्रितयमयं त्रिकोणं कामकलाक्षररूपमाह—भगवान् परमशिवः ।

ततः श्रीपराभट्टारिकामयमिदमेव बिन्दुतत्वमूर्ध्वाधोमुखनवयोन्यात्मकश्रीचक्रमभवदित्याह—वामा ज्येष्ठा रौद्री अम्बिका चकारात् पराशक्तिञ्च । इमाः पञ्चशक्तयः अनुत्तरांशभूताः अनुत्तरांशाः श्रीचक्रान्तर्गताधोमुखानि पञ्चत्रिकोणानि । तत्वेन भूता जाता इत्यर्थः ।

इच्छाज्ञानक्रियाशान्ताश्चैताश्चोत्तरावयवाः ।
व्यस्ताव्यस्ततदर्णद्वयमिदमेकादशात्म पश्यन्ती ॥२४॥

इच्छाज्ञानक्रियाशान्ताः चतस्रः शक्तयः उत्तरावयवाः ऊर्ध्वमुखत्रिकोण चतुष्टयस्वरूपाः । अयं भावः पराविलसनरूपा एताः पश्यन्ती

वामा ज्येष्ठा रौद्री अम्बिका। तथोत्तरावयवाश्चेति इच्छाज्ञान-क्रियाशान्ताश्चैताः। एतच्छवितनवकमयं नवत्रिकोणचक्रमिति। एतच्चतुश्शत्याम्—

आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला।

इत्यारभ्य "वैखरी विश्वविग्रहा" इत्यन्तेन सम्यक् निरूपितम्। तत एव अवधार्यं। व्यस्ताव्यस्ततदर्णद्वयं। व्यस्यं व्यष्टिरूपम्। अव्यस्तं समष्टिरूपम्। सर्वोपनिषदत्रासिद्धं। तद्वर्णद्वयं सन्दंशन्यायेन अखिलाक्षरात्मकमातृमन्त्रमयप्रकाशविमर्शरूपपूर्णाहन्ताभावगर्भकाम—कलाक्षरात्मकबिन्दुतत्वमित्यर्थः। अत्रेदं पूर्णाहन्तामयं परब्रह्मपत्नी-विशिष्टमेव सकलकार्यनिर्वाहकमिति सर्वागमसिद्धम्। तथा बृहदा-रण्यके—"आत्मैवेदमग्र आसीत्। पुरुषविधः सोऽन्वीक्ष्य नान्यदात्म-नोऽपश्यत्सोहमस्मीत्यग्रे व्याहरत्। ततोऽहं नामाभवत्। तस्माद-प्येतर्ह्यामन्त्रितोऽहइयमित्येवाग्र उक्त्वाऽथान्यन्नाम प्रब्रूत" इत्युपक्रम्य पूर्णाहन्तामयं परब्रह्मस्वरूपं दिव्यदम्पतीरूपत्वमास्थाय सर्वतत्वनिर्मातृ-विद्योतत इति उपरितेनवाक्येन समाप्यते। तथा हि। "स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत् स हेतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ संपरिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्। ततः पतिश्च पत्नी चाभव-ताम्" इत्यादि। तथा तत्रैवान्यत्र—"आत्मैवेदमग्र आसीत्। एक एव सोऽकामयत जाया मे स्यादथ प्रजायेय। अथ वित्तं मे स्यात् अथ कर्म कुर्वी-येते तावान् वै काम इत्यादौ सपत्नीकमेव ब्रह्म प्रतीयते" इति। एवंभूतं तद्वर्णद्वयं एकादशात्मा संहृत्य विचार्यमाणे एकादशविधं भवतीति अर्थः। परादिशान्तान्तं शक्तिदशकं व्यष्टिरूपं सर्वसमष्टिरूपत्वेन चैकम् तेन चैका दशात्मकमिदं बिन्दुतत्वमेव पश्यन्ती शक्तिकारणम्। सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानीति शांत उपासीत इतिवत् कार्यकारणयोरभेदव्यपदेशः।

इतः परं वसुकोणदशारादिचक्रसृष्टिप्रकारमभिधातु परमप्रकृत-त्रिकोणचक्रक्रम निगमयति—

एवं कामकलात्मा त्रिबिन्दुतत्वस्वरूपवर्णमयी।
सेयं त्रिकोणरूपं याता त्रिगुणस्वरूपिणी माता ॥२५॥

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण कामकलात्मा कामः प्रकाशैकस्वभावः अनुत्तराक्षरात्मा परमशिवः। कला स्वखिलवर्शान्त्यपरमहंसाक्षरमयी

विमर्शविग्रहः । एतदुभयात्मकत्वं नाम स्वाभाविकपरिपूर्णाहंभावशालित्वम् । एतच्च बिन्दुरहङ्कारात्मेत्यत्र स्पष्टमभ्यधायि । एवंरूपा कामकलात्मा त्रिबिन्दुतत्वस्वरूपवर्णमयी । त्रिबिन्दवः पूर्वोक्तरक्तशुक्लमिश्रात्मानः । तेषां स्वभावः तत्वम् । तत्स्वरूपा ये वर्णाः वाग्भवादयः तदात्मिकाम् । तथा रहस्याम्नाये—

बिन्दुत्रयात्मकं स्वात्मश्रृङ्गाटं विद्धि सुन्दरम् ।
मिश्रं शुक्लं च रक्तं च पुराणं प्रणवात्मकम् ॥
रेखात्रयावगन्तव्यसंवित्सान्द्रशिवात्मकम् ।
रक्तमस्य निराधारमवशिष्टं ततः प्रियम् ॥
तयोर्मिश्रं तु संयोगे निर्वाणं निर्मलं पदम् ॥ इति ।

चतुश्शत्याम्—

कूटत्रयात्मिकां देवीं समष्टिव्यष्टिरूपिणीम् ।
आद्यां शक्तिं भावयन्तो भावार्थमिति मन्यते ॥ इति ।

सेयं त्रिकोणरूपमापन्ना चिदानन्दघनपरमार्थसकलाम्नायसारभूता इयं विश्वाहंभावनाशालिभिः महायोगिवर्यैरात्मसाक्षित्वेनानुभूयमाना त्रिगुणा इच्छाज्ञानक्रियामायाशक्तिमया सत्वरजस्तमांसि तत्वरूपिणी। तदवष्टम्भेन हि जगत्सृष्टयादि विधत्ते। गुणाश्च इच्छाज्ञानक्रियामायाशक्तिमया एव। तथा प्रत्यभिज्ञायाम् "स्वाङ्गरूपेषु तत्वम् ।" इत्यादि। इच्छाज्ञानक्रियामया एव गुणाः सत्वरजस्तमांसि इति। अत एव माता सर्वजगन्निर्मात्री एका आत्मा वा इदं एक एवाग्र आसीत् इति श्रुत्युक्तरीत्या सर्वतत्वातीती परा शक्तिः। त्रिकोणरूपं अनुत्तरानन्देच्छासंघट्टात्त्रिकोणमित्यभियुक्तोक्तरीत्या सर्वसिद्धिप्रदायकातिरहस्यभूतत्रिकोणचक्रं याता जगन्मयो जातेत्यर्थः।

तथा वचनम्—

अनुत्तरानन्दचित्तेरिच्छाशक्तौ नियोजितम् ।
त्रिकोणमिति तत्प्राहुर्विसर्गामोदसुन्दरम् ॥

एका परा तदन्या, वामादिव्यष्टिमातृसृष्टयात्मा ।
तेन नवात्मा जाता, माता सा मध्यमाभिधानभ्याम् ॥२६॥

एकापरेति—इतः पराविलसनरूपायाः पश्यन्त्याद्या अपि नवयोनिचक्रात्मना नवात्मकत्वमाह। तदन्या वामा व्यष्टिमातृसृष्ट्यात्मा तेन नवात्मा जातेति तदन्या परा विकासभूता पश्यन्ती वामादिव्यष्टिमातृसृष्ट्यात्मावामादिशान्तान्तशक्तिनवकमयी यतस्तेन कारणेन सा माता पश्यन्ती नाम जननी। नवात्मा वामादिशान्तान्तशक्तिकदम्बकाविर्भावकारणनवयोनिचक्रात्मिका जाता प्रादुर्भूतेत्यर्थः। अत्र वामादिशक्तीनां लक्षणं प्रसङ्गात् किञ्चिदुच्यते। तत्र वामा नाम स्वान्तःस्थितप्रपञ्चवमनाद्विश्वजनयित्रीत्यभिधीयते। ज्येष्ठा सर्वमङ्गलकारिणी। रौद्री सर्वरोगविद्राविणी। अम्बिकासमस्तेष्टप्रदा शक्तिः।

तथागमश्च—

वामा विश्वस्य वमनात् ज्येष्ठा शिवमयी यतः।
द्रावयित्री रुजं रौद्री दोग्ध्री चाखिलकर्मणाम्॥ इति।

अम्बिका च सा स्फुरत्ता महासत्तेति। प्रत्यभिज्ञास्थित्या सर्वातिशायी परिपूर्णरूपस्वात्मस्फुरणावलोकनचतुरा। तथा चतुश्शत्याम्—"आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला। अम्बिकारूपमापन्ना परा वाक् समुदीरिता।" इच्छाज्ञानक्रियाशक्तयस्तु पश्यन्ती मध्यमा वैखरीरूपाः इति प्रपञ्चिताः। चतुश्शत्याम्—

इच्छाशक्तिस्तथा ज्ञेया पश्यन्ती वपुषा स्थिता। इत्यादिना।

शान्ता च निष्कलं निष्क्रियं शान्तमित्यादिश्रुत्या निरङ्कुशा चिन्मयी शक्तिः। तथा व्याचष्टे भगवानमृतानन्दनाथः—निरंशौ नादबिन्दू चेत्यत्र निरङ्कुशा शान्ता शक्तिः शान्ताया निरंशत्वं चिद्रूपत्वादिति। मध्यमाभिधानाभ्याम् मध्यमापरापश्यन्त्योः समरसावस्था अभिधानाभ्यां नामधेयाभ्याम्।

अनन्तरं मध्यमाया अपि प्रकारान्तरेण नवात्मकत्वं ब्रूते—

द्विविधा हि मध्यमा सा सूक्ष्मा स्थूलाकृतिस्थिता सूक्ष्मा।
नवनादमयी स्थूला नववर्गात्मा च भूतलिप्याख्या॥२७॥

सा अन्तर्मुखपरमयोगिभिः दृश्या मध्यमा नाम शक्तिर्द्विविधा द्विप्रकारा। स्थूलसूक्ष्मभावात्। तत्र सूक्ष्मा समाधिस्थलेन अनुभूयमाना। स्थूलाकृत्या पण्डितपामराभिलपनयोग्यवर्णावलया स्थिता सर्वदा वर्तमाना। एतदेव व्याचष्टे-सूक्ष्मा नवनादमयी स्थूला नववर्गात्मा इति—

अयमर्थः—मित्रावरुणसदनात् वायुनिरोधनेन स्वाधिष्ठानादि-कमलभेदपुरस्सरं द्वादशान्तारविन्दासनस्थपरमशिवाङ्कमुपसर्पन्ती महा-मातृका कुण्डलिनी बहुविधनादात्मिका या अनुभूयते समाधिसमधिगत सर्वार्थैः महामाहेश्वरैः स्वात्मत्वेन मन्यते। नवनादमयीति परमहंसो-पनिषत्। यथा—"अथ हंसपरमहंसनिर्णयं व्याख्यास्यामः। ब्रह्म-चारिणे दान्ताय गुरुभक्ताय हंसहंसेत्यादिना परमहंसं परं ब्रह्म निर्दिश्य पुनरपि तदुपासनं विशिनष्टि"—गुदमवष्टभ्याधाराद्वायु-मुत्थाप्य स्वाधिष्ठानं प्रदक्षिणीकृत्य मणिपूरकं गत्वाऽनाहतमतिक्रम्य विशुद्धौ प्राणान्निरुध्य आज्ञामनुधावत् ब्रह्मरन्ध्रं ध्यायन इत्यादिब्रह्म-रन्ध्रे ध्यानविशेषमुक्त्वा पुनरपि मूलाधारात् ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं व्यापिन्या मूलकुण्डलिन्याः स्वरूपं नादात्मकमिति व्याचष्टे—यदाहंसो बिलीनो भवति यदा नादमाधारात् ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तं शुद्धस्फटिकसंकाशं स वै ब्रह्म परमात्मेत्युच्यते इत्यादि तदुपासनाङ्गजालानि उपन्यस्यन्ते। नादं विभजते। स च दशविधोपजायते। चिणीति प्रथमः। चिणि चिणीति द्वितीयः। घण्टानादस्तृतीयः। शङ्खनादश्चतुर्थः। पञ्चम-स्तन्त्रीनादः। षष्ठस्तालनादः। सप्तमो वेणुनादः। अष्टमो भेरीनादः। नवमो मृदङ्गनादः। दशमो मेघनादः। नवमं परित्यज्य दशममेवा-भ्यसेत्। तस्मिन् विलीने मनसि गते सङ्कल्पे विकल्पे च दग्धे सदाशिवोऽहमिति परमहंसोपनिषत्। मूलाधारे दग्धे सदाशिवोऽहमिति परमहंसोपनिषदः मूलाधारे महेश्वरीत्यादिना च न वेदविधिगोचर-मित्यन्तं नववर्गात्मा अकचटतपयशलात्मिका स्थूला सर्वव्यवहार-विषयिणीत्युच्यते।

यथा श्रीतन्त्रसद्भावे—

या सा तु मातृका लोके परतेजस्समन्विता।
तया व्याप्तमिदं सर्वमाब्रह्मभुवनान्तरम्॥

तत्रस्थश्च यथा नादो व्यापितश्च सुरार्चिते ।
अवर्णस्थो यथा वर्णस्थितः सर्वगतः प्रिये ॥
तथाहं कथयिष्यामि निर्णयार्थं स्फुटं तव ॥

इत्यारभ्य—

या सा शक्तिः परा सूक्ष्मा निराकारेति कीर्तिता ।
हृद्बिन्दुं वेष्टयित्वा तु सुषुप्ता भुजगाकृतिः ॥
तत्र सुप्तो महायोगी न किञ्चिन्मन्यते यमी ।
चन्द्रार्कानिलनक्षत्रैर्भुवनानि चतुर्दश ॥
व्याप्तोदरे तु सा देवी विषवन्मूढतां गता ।
प्रबुद्धा सा निनादेन परेण ज्ञानरूपिणी ॥
मथिता चोदरस्थेन बन्धनादपि वह्निना ।
तावद्वै भ्रमयोगेन मन्थनं शक्ति विग्रहे ॥
भेदात्तु प्रथमोत्पन्नात् बिन्दुर्नादत्वमीयते ।
समुत्थिता यथा तेन कालसूक्ष्मा तु कुण्डली ॥
चतुष्कलमयो बिन्दुः शक्तेश्चोत्तरगः प्रभुः ।
मध्यमन्थन योगेन ऋजुत्वं जायते प्रिये ॥
ज्येष्ठा शक्तिः स्मृता सा तु बिन्दुद्वयसुमध्यमा ।
विन्दुनादत्वमायाता रेखायाऽमृतकुण्डली ॥
लाकिनी नाम सा ज्ञेया उभौ बिन्दूयथागतौ ।
त्रिपदा सा समाख्याता रौद्री नाम्ना तु गीयते ॥
रोधिनी सा समुद्दिष्टा मोक्षमार्गनिरोधनात् ।
शशाङ्कशकलाकारा अम्बिका चार्धचन्द्रिका ॥

एकैवेत्थं परा शक्तिः त्रिधा सा तु प्रजायते ।
आभ्यो युक्ता विविक्ताभ्यः सञ्जातो नववर्गकः ॥
नवधा च स्मृता सा तु नववर्गोपलक्षिता ॥ इति ।

अत्र कश्चित्सूक्ष्मस्थूलाकृतिस्थिरेति पाठं कल्पयित्वा सूक्ष्मा स्थिरा स्थूला नववर्गमयीत्याह। एवं च सति नववर्गेति पदानन्वयः संप्रदायनिरोधश्च। स तु स्वबुद्धया संप्रदामजानान एवमर्थमाह। तस्मादस्मदुक्तार्थस्य तदुक्तार्थस्य चौचित्यमर्थविशेषज्ञैर्विद्वद्भिरेव ज्ञातव्यमित्यलम्। भूतलिप्याख्या भूताश्चैते लिपयश्च। अत्र लिपीनां भूतत्वं नाम विशेषविशेषविन्यासाभिगम्यत्वम्। तच्च कल्पनामात्रमेव। अक्षराणां तेजोरूपशक्तयात्मकत्वात्। तथा च आगमः—

या सा तु मातृका लोके परतेजस्समन्विता। इति।
सर्वे वर्णात्मका मन्त्रास्ते च शक्त्यात्मकाः प्रिये। इत्यादि।

तेषामाख्या अभिधा यस्यास्सा तत्र भ्रान्तिलिप्येति कश्चिद्याचष्टे। तत्तु छन्दोभङ्गादनुपपन्नमित्यनादरणीयम्।

सूक्ष्मरूपा हि मध्यमा स्थूलरूपायाः कारणभावमापन्ना एकैवेत्यत आह—

आद्या कारणमन्या कार्यं त्वनयोर्यतस्ततो हेतोः।
सैवेयं न हि भेदः तादात्म्यं हेतुहेतुमतोर्दिष्टम् ॥२८॥ इति।

आद्या पूर्वोक्तसूक्ष्मा कारणं प्रथमोद्भूतत्वात्। अन्या स्थूला कार्यं तज्जन्यत्वात्कार्यम्। यतस्तस्मात्कारणात्—अनयोः सूक्ष्मस्थूलयोः कार्यकारणयोर्भाव। ततो हेतोः तेन कारणेन इयं स्थूला सैव सूक्ष्मा शक्तिरेव। न हि भेदः भेदो नास्त्येव। ननु कथमभेदे कार्यकारणभाव इत्यत्राह—तादात्म्यं हेतुहेतुमतोर्दिष्टमिति–तादात्म्यं भेदाभेदरूपम् हेतुहेतुमत् जन्यजनकरूपवत् इष्टं मृद्घटवत् वाचारम्भणमात्रत्वात्। एकमेव वस्तु उभयविधं भवति। सर्ववेदान्तसम्मतमित्यर्थः।

अनन्तरं मध्यशृङ्गारतेजः प्रसरणात्मकवसुकोणादिचक्रनिरूपण-द्वारा वैखरीशक्त्याविर्भावमाह—

शषसपवर्गमयं तद्वसुकोणं मध्यकोणविस्तारः ।
नवकोणं मध्यं चेत्यस्मिंश्चिद्दीपदीपिते दशके ॥२६॥ इति ।

तद्वसुकोणं सर्वरोगहराख्यं चक्रं शषसपवर्गमयं शषसपवर्गात्मकाष्टकोणं मध्यकोणस्य मध्यत्रिकोणस्य विस्तारो विकासः यस्त तत्तादृशं मध्यकोणसहितं नवकोणं मध्यं च वैन्दवाख्यं संहृत्य दशके अस्मिन् बिन्दुत्रिकोणवसुकोणरूपे चिद्दीपदीपिते वैन्दवासनसंरूढसंवतनिलचिद्धनमित्युक्तरीत्या बिन्दुचक्राधिरूढायास्तेजोमूर्तेस्त्रिपुरायाः प्रभापटलप्रकाशितेत्यर्थः ।

तच्छाया द्वितयमिदं दशारचक्रद्वयात्मना विततम् ।
तटचकवर्गचतुष्टयविलसनविस्पष्टकोणविस्तारम् ॥३०॥

तच्छाया द्वितयमिदं इति—तस्य पूर्वोक्तस्य तेजोराशिमयस्य चक्रत्रित्तयस्य छायाद्वितयं कान्तिद्वितयम् । दशारचक्रद्वयात्मना अन्तर्दशारबहिर्दशाररूपेण निरवधिकतेजोमण्डलं तस्य संबन्धि कान्तिद्वितयम् । सर्वरक्षा करसर्वार्थसाधकाभिधचक्रद्वयात्मना परिणतमित्यर्थः । तथा चोक्तम्—

नवत्रिकोणस्फुरितप्रभारूपदशारकम् । इति ।

तच्चक्रद्वयस्वरूपं व्याचष्टे—तटचकवर्गात्माक्षरदशकरूपं अन्तर्दशारं चवर्गकवर्गात्माक्षरदशकरूपं बहिर्दशारमित्यर्थः ।

एतच्चक्रचतुष्कप्रभासमेतं दशारपरिणामः ।
आदिस्वरगणगत चतुर्दशवर्णमयं चतुर्दशारमिदम् ॥३१॥

एतच्चक्रचतुष्कस्य विन्दुत्रिकोणवसुकोणान्तर्दशारात्मकस्य चक्रचतुष्कस्य, प्रभा कान्तिः । तया समेतं संयुक्तम् । दशारपरिणामः बहिर्दशारचक्रमिति यावत् । बहिर्दशारचक्रस्य वैन्दवादिचक्रचतुष्टयसन्निधानादिति तात्पर्यम् । तत्र तत्प्रभा व्यानोतीत्पर्थः । तथा

चोक्तम्—चतुश्चक्रप्रभारूपसंयुक्तपरिणामतः ।' इति। अथवा—एतच्चक्रचतुष्कस्य त्रिकोणवसुकोणदशारद्वयरूपस्य प्रभासमेतं कान्तिसंयुक्तं दशारपरिणामं दशारचक्रभूतं वसुकोणं चक्रमित्यर्थः। तदेवाह-आदिस्वरगणकचतुर्दशवर्णमयं चतुर्दशारम् इति—अकारादिचतुर्दशवर्णात्मिकचतुर्दशकोणसहितं सर्वसौभाग्यदायकाभिधचक्रमित्यर्थः। एवं बैन्दवादिमनुकोणपर्यन्तचक्रवर्णनद्वारा वैखरी शक्तिराविर्भूतेत्याह।

परया पश्यन्त्यापि च मध्यमया स्थूलवर्णरूपिण्या ।
एताभिरेकपञ्चादशाक्षरात्मिका वैखरी जाता ॥३२॥

परादिशक्तिलक्षणं च पूर्वमेव बहुधा प्रपञ्चितम्। अयमर्थः—आदिक्षान्ताक्षरराशिमयाखिलप्रपञ्चनिर्मात्री सर्वशब्दात्मिका वैखरीति। तथा चोक्तम्। वैखरी विश्वविग्रहेति वाचा वक्त्रे करणविशदां वैखरीं ते प्रपद्ये इत्यादि।

इतः परं सर्वसंक्षोभणसर्वाशापरिपूरकाभिधचक्रद्वयं वैखरीवर्णात्मकमेवेत्याह—

कादिभिरष्टभिरुपचितमष्टलाब्जं च वैखरीवर्गैः ।
स्वरगणसमुदितमेतद्द्व्यष्टदलाम्भोरुहं च संचिन्त्यम् ॥३३॥

वैखरीवर्गैः वैखरीशक्तिस्वरूपैः। अष्टभिः कादिभिरुपचितं सम्यक् प्रोक्तम्। अष्टदलाब्जं च सर्वसङ्क्षोभणचक्रम्। तथा स्वरगणसमुदितम्। स्वरगणै अकारादिषोडशवर्णैः समुदितं सम्यक् भावितं एतत्तपरिदृश्यमानं द्व्यष्टदलाम्भोरुहं सर्वाशापरिपूरकचक्रं संचिन्त्य सर्वदा भावनीयमित्यर्थः।

बिन्दुत्रयमयतेजस्त्रितयविकारस्थितानि वृत्तानि ।
भूबिम्बत्रमेतत् पश्यन्त्यादित्रिमातृविश्रान्तिः ॥३४॥

तानि वृत्तानि मन्वश्रोपरि अष्टदलपद्मोपरि षोडशदलपद्मोपरि च स्थितानि। बिन्दुत्रयं पूर्वोक्तशुक्लमिश्रात्मकम्। तन्मयं तत्तेजस्त्रितयं सोमसूर्याग्निरूपम्। तद्विकारः तन्मयानीत्यर्थः। तत्र

वृत्तत्रयस्य तेजस्त्रयात्मकत्वकथनेन सोमसूर्यानलात्मत्रिखण्डमयत्वं चक्रस्योक्तम्। यथागमः -

त्रिखण्डं मातृकाचक्रं सोमसूर्यानलात्मकम्। इति।

सुभगोदये—

सोमसूर्यकृशान्वात्मतेजस्त्रितय रूपकम्।
नेत्रत्रयं भावयामि वृत्तत्रितयमञ्जसा॥

तद्विकारश्च तानि वृत्तानि वेदाः प्रमाणमितिवत् द्रष्टव्यम्। भूबिम्बत्रयं अणिमादिब्राह्म्याादिसर्वसंक्षोभिण्यादिशक्तिकदम्बकाबासभूतं पश्यन्त्यादि त्रिमातृविश्रान्तिः। पश्यन्ती मध्यमावैखरीशक्तयः एतावत्पर्यन्तं विजृम्भमाणाः त्रिकोणादि भूपर्यन्तं श्रीचक्रात्मना चकासति इत्यर्थः। एतच्च "आत्मनः स्फुरणं पश्येद्यदा सा परमा कला" इत्यारभ्य "वैखरी विश्वविग्रहा" इत्यन्तेन ग्रन्थजातेन सम्यक् निरणायि।

एव 'मध्यं चक्रस्य स्यात्' इत्युपक्रम्य 'पश्यन्त्यादित्रिमातृविश्रान्तिः' इत्यन्तं श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्याश्चक्रं सम्यक् निरूप्य अनन्तरं तदावरणचक्रान्तर्गतशक्तिनिकुरुम्बं तन्निकटस्थितश्रीगुरुमण्डलमपि श्री देव्यवयवपरिणतिरूमेवेत्याह—

क्रमणं पदविक्षेपः क्रमोदयस्तेन कथ्यते द्वेधा।
आवरणं गुरुपङ्क्तिद्वयमिदमम्बा पदाम्बुजप्रसरम्॥३५॥

इत्यादि अणिमादि भूतयोऽपि इत्यन्तम्। क्रमणं पदक्रमः। स च द्विविधः। पदविक्षेपरूपः क्रमोदयरूपश्च। तत्र पदविक्षेपो नाम-सुन्दर्या अनन्तकोटि किरणात्मकानन्तशक्तिजननसामर्थ्यम्। तथा चोपनिषत्—

मरीचयः स्वायंभुवः ये शरीराण्यकल्पयन्। इत्यादि।

तमेव भान्तमित्यादि। यथागमश्च—

ज्योती रूपा पराकारा तस्या देहोद्भवाश्च वै।
किरणाश्च सहस्रं च द्विसहस्रं च लक्षकम्॥
कोटिरर्बुदमेतेषां परा सङ्ख्या न विद्यते।
तामेवानुप्रविश्यैव भाति सर्वं चराचरम्॥
यस्या देव्या महेशान्या भासा सर्वं विभासते।
तद्भावरहितं किञ्चिन्न च इच्छा प्रकाशते॥
तस्याश्च शिवशक्तेश्च चिद्रूपायाश्च तं विना।
आद्यमापाद्यते नूनं जगदेतच्चराचरम्।
तेषामनन्तकोटीनां मयूखानां महेश्वरि॥
मध्ये षष्ठ्युत्तरं देवि त्रिशतं किरणाश्शिवे।
ब्रह्माण्डं भासयन्त्येते पिण्डाण्डमपि पार्वति॥ इत्यादि।

सर्वपीठनिवासिन्यस्सगार्वश्चिन्मरीचयः। इत्यादि।

रश्मिचक्रं च परितो भक्तिनम्रः प्रपूजयेत्। इत्यमृतानन्दाः।

क्रमोदयो नाम दिव्यसिद्धमानवौघरूपा अनन्तप्रकाशात्मकश्रीगुरुमण्डलात्मकतया प्रसरणम्। तथा रहस्याम्नाये "चरणद्वयचन्द्रार्करश्मयो गुरवः किल।" इति। एतच्चोत्तरत्र प्रपञ्च्यते। एतदेव क्रमद्वयं विवृणोति–आवरणं आवरणचक्रस्थितशक्तिनिकुरुम्बं मञ्चाः क्रोशन्तीतिवत्। गुरुपङ्क्तिः गुरुमण्डलम्। इदं द्वयं अम्बापादाम्बुजप्रसरः अम्बायास्त्रिपुरायाः पदाम्बुजस्य श्रीपादयुगलस्य। प्रसरः प्रसरणं विजृम्भणमिति यावत्। यजुश्रुतिः—"ज्योतिष्मद्भ्राजमानं महस्वत्" इत्यादि। तथा प्रामाणिकवचनम्—

अनेककोटिभेदैस्तु गदितं त्रैपुरं महः।
तत्र मध्ये परा दीप्ता महात्रिपुरसुन्दरी॥

षडन्वयशाम्भवे च—

वरदाभयहस्ताश्च सर्वा वामार्धविग्रहाः ।
तेजोरूपाः परा ध्येयाः केवलं मोक्षकांक्षिभिः ॥

तत्प्रसारप्रसरणीं क्रमशो विवृणोति—

सेयं परा महेशी चक्राकारेण परिणमेत यदा ।
तद्देहावयवानां परिणतिरावरणदेवतास्सर्वाः ॥३६॥
आसीनां बिन्दुमये चक्रे सा त्रिपुरसुन्दरी देवी ।
कामेश्वराङ्कनिलया कलयाचन्द्रस्य कल्पितोत्तंसा ॥३७॥
पाशाङ्कुशेक्षुचाप प्रसूनशरयञ्चकाञ्चितस्वकरा ।
बालारुणारुणाङ्गी शशिभानुकृशानुलोचनत्रितया ॥३८॥

सेयमपरिच्छिन्नान्ततेजोराशिमयी परासर्वोत्कृष्टा महेशी अनन्तकोटियोगिनीबृन्दसमाराधितनित्यनिरवधिकातिशयानन्दमयात्मसाम्राज्यसंपदाभिमानशालिनी । यजुश्रुतिः—"यतो वा ।" इत्यादि । तथा चोक्तम्—

चतुष्षष्टियुताः कोटयो योगिनीनां महौजसाम् ।
चक्रमेतत् समाश्रित्य संस्थिता वीरवन्दिताः ॥ इति ।

ललितोपाख्याने च—

वाचामगोचरमगोचरमेव बुद्धेरीदृक्-
तया न कलनीयमनन्यतुल्यम् ।
त्रैलोक्यगर्भपरिपूरितशक्ति चक्र-
साम्राज्यसंपदभिमानमभिस्पृशन्ति ॥

इति चक्राकारेण, चक्रं नवात्मकमिदं नवधा भिन्नमातृकम् । इति सर्वानन्दमयबैन्दवादित्रैलोक्यमोहनान्तचक्रनवकात्मना, स्फुरत्तामात्मनः पश्येत् इति पूर्णानन्दमयात्मावलोकनसमये परिणमेत ।

आकारान्तरमावहेत प्रार्थनायां लिङ्। दिङ्मात्रप्रपञ्चप्रादुर्भावस्य प्रार्थनाविषयत्वात्। ब्रह्मणः परिणामश्रुत्यैवाभिधीयते यथा— "सोऽकामयत बहुस्थां प्रजायेयेतीति सृष्टिं प्रस्तुत्य तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। तदनुप्रविश्य सच्च त्यच्चाभवत् निरुक्तं चानिरुक्तं च निलयनं चानिलयनं च विज्ञानं चाविज्ञानं च सत्यं चानृतं च सत्यमभवत्।" स्मृतिश्च। अस्यां परिणतायामित्यादि। तद्देहावयवानां तस्यास्त्रिपुरसुन्दर्या देहस्तेजः पुञ्जात्मकः तस्यावयवाः किरणाः तेषां परिणतिरवस्थान्तरापत्तिरिहावरणदेवताः वशिन्याद्यणिमान्तशक्तिनिकुरुम्बं चिदानन्दसमुद्रात्मकमेव समुद्रसकाशात्फेनबुद्बुदतरङ्गादिवदनन्तकोटिशक्तयः आविर्भावतिरोभावौ भजन्त इत्यर्थः।
तथा चोपनिषत्—

यस्मिन् भावाः प्रलीयन्ते लीनाश्च व्यक्ततां ययुः।
पुनश्चाव्यक्ततां भूयो जायन्ते बुद्बुदा इव॥

चतुश्शत्यां च—

एवं रूपं परं तेजः, श्रीचक्रवपुषा स्थितम्।
तदीयशक्तिनिकरस्फुरदूर्मिसमावृतम् ॥ इति।

सुभगोदयवासनायामपि—

चक्रराजे परामृश्य योगिनीः प्रकटादिकाः।
विमर्शाख्यचिदम्भोधिलहरीस्था अपि क्रमात्॥
यस्या उल्लसिता एता योगिन्यश्चिद्घनत्विषः।
चक्रेश्वरे भजाम्येताः चक्रं चक्रं समाश्रिताः॥ इति।

वशिन्याद्यावरणशक्तिस्वरूपवर्णनमारभमाणः तदादौ मूलदेवीस्वरूपमाह—आसीनेत्यादि—बिन्दुमये सर्वानन्दमयाख्ये परमाकाशे बैन्दवे परमाकाशे इत्युक्तत्वात्। चक्रे आत्मसङ्क्रमणविहरणार्हपीठे। तथा रहस्योपनिषदि—यदेषा चंक्रमत्तच्चक्रमभवदिति। आसीना उपरिप्रदेशे विराजमाना सा देशकालाकारानवच्छिन्ना तत्स्वरूपिणी

त्रिपुरसुन्दरी सर्वकारणत्वेन स्पृहणीयस्वभावा देवी विश्वजननादिसर्वव्यापारविनोदिनी कामेश्वराङ्कनिलया कामेश्वरस्य श्रीनाथस्य अङ्कं वामोरुतरलभागः निलयः अवस्थानं यस्यास्सा। तथा चोक्तं परमशिवेन—

कला विद्या परा शक्तिः श्रीचक्राकाररूपिणी ।
तन्मध्ये बैन्दवं स्थानं तत्रास्ते परमेश्वरी ॥
सदाशिवेन संपृक्ता सर्वतत्वातिगा सती ॥ इति ।

अन्यत्र च —

विश्वाकारप्रभाधारनिजरूपशिवात्मकम् ।
कामेश्वराङ्कपर्यङ्कनिविष्टमतिसुन्दरम् ॥ इति ।

श्रीनाथानन्दश्च—

आदिश्रीगुरुनाथस्य वामाङ्कोपरि संस्थिताम् । इति ।

देवी विश्वसर्जनादिव्यापारविनोदिनी। चन्द्रस्य कलया कल्पितोत्तंसा। अत्र कल्पितपदेन चन्द्रमण्डलस्य भगवतीलीलोपकरणत्वं लक्ष्यते।

पाशाङ्कुशेक्षुचापप्रसूनशरपञ्चकाञ्चितस्वकरा। इतिपाशः स्वात्मरूपभेदबन्धनसन्धानभूतेच्छाशक्तिस्वरूपः। अङ्कुशः स्वरूपभेददलनोपायात्मकज्ञानशक्तिमयः। इक्षुचापेषु पञ्चके स्वभिन्नाकारावर्जनसाधनरूपक्रियाशक्तिरूपे। अयमर्थः—इच्छाज्ञानक्रियाशक्तय एव तदाज्ञया पाशादिस्वरूपमापन्नाः तदुपासनमाचरन्तीत्यर्थः। तथा च चतुश्शत्याम्—

इच्छाशक्तिमयं पाशमङ्कुशं ज्ञानरूपिणम् ।
क्रियाशक्तिमये बाणधनुषी दधदुज्जला ॥ इति

सुभगोदयवासनायामपि—

देव्यासंवित्सत्ताया भेदोद्गमनहेतुकाः ।
आयुधाख्याः पराः शक्तीर्बाणाद्याः पूजयाम्यहम् ।। इति ।

बालारुणारुणाङ्गी उदादित्यसङ्काशा । शशिभानुकृशानु-लोचनत्रितया सोमसूर्याग्निमय त्रिनयना । तथा चोक्तम्—

बालार्कमण्डलाभासां चतुर्बाहुं त्रिलोचनाम् ।
पाशाङ्कुशधरां चापं धारयन्तीं शिवां प्रिये ।। इति ।

एतदेव दिव्यमिथुनं दिव्यसिद्धमानवौघभावेन अविशेषभेदभिन्न-गुरुमण्डलस्वरूपमुपास्याह ।

तन्मिथुनं गुणभेदा दास्ते बिन्दुत्रयात्मके त्रयश्रे ।
कामेशी मित्रेशप्रमुखद्विन्द्वत्रयात्मना विततम् ।।३९।।

तन्मिथुनं तत सर्वातीतत्वेन सर्वोपनिषत्प्रसिद्ध मिथुनं कामकामे-श्वरीमयम् । अयमर्थः—परमात्मा हि स्वात्मानमेव स्त्रीपुंसमयं कृत्वा मिथुनरूपमापन्नो विहरते । अत्र श्रुतिः—"स एको नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमेत स द्वितीयमैच्छत् स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ संपरिष्वक्तौ स इममात्मानं द्विधाऽपातयत् । ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम्" इत्यारभ्य, "यदिदं किञ्चिन्मिथुनमापिपीलिकाभ्यस्त-त्सर्वं सृजति" इत्यन्तेन मिथुनात्मना विहरणशीलं ब्रह्मेत्याह । तथा रहस्यागमश्च—

गुरुशिष्यपदे स्थित्वा स्वयमेव सदाशिव । इति ।

इत्यादिप्रकाशविमर्शात्मना मिथुनीभूतः परमशिवादेव सकलं तन्त्रं समभवदित्याह । एवं तन्मिथुनं कामकामेश्वरीरूपं मित्रेशनाथ-कामेश्वरी श्रीमदुड्डीशनाथवज्रेश्वरी षष्ठीशनाथ भगमालिनी । एव-मादिमिथुनत्रयात्मना दिव्यसिद्धमानवौघादिक्रमरूपेण विततं मिथुनत्रयं विस्तृतमित्यर्थः ।

एतच्च आसीना श्रीपीठे कृतयुगकाले गुरुश्शिवो विद्याम् इत्यत्र सम्यक् प्रपञ्चयिष्यामि। रहस्योपनिषदि चायमर्थस्सम्यक् निरूपितः। यथा मध्ये चक्रं बिन्दुः बिन्दौ प्रपञ्चो लोकः लोको देहस्सनादरूपः अर्थात्मिका शक्तिः चक्रं तनुः बिन्दुः प्राणः मध्ये शक्तिरिति सप्रपञ्चो गुणः गुणो लिङ्गं स्वयम्भवादिभेदेन त्रिधा भूतं त्रिलिङ्गिनाम् जयदं कामकामरूपं कैवल्यं उडयानं पूर्णगिरिजालन्धरं यत्पुरुषा देवी सात्विका भवति। अत्रेदं व्याख्या स्यात्—यदिदं नीलकण्ठः शमीगर्भायोवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति पृच्छति यदिदं दृश्यते तदानन्दयोनिः तेनैव जीवति तदेव जीवतीति तदेषाभ्युक्ता इत्यादिना त्रिपुराचक्रनिरूपणपुरस्सरं सकलप्रपञ्चानां त्रिपुराया एव सकाशादुत्पत्तिजीवनलयाः प्रतिपाद्यन्ते। ततश्च सर्वफलप्रदायिनी त्रिपुरैव श्रीदेवीस्वरूपैर्वीरैर्भजनीयेत्युक्तं भवति। तथा रहस्यागमश्च—

यस्य नो पश्चिमं जन्म यदि वा शंङ्करः स्वयम्।
तेनैव लभ्यते विद्या श्रीमत्पञ्चदशाक्षरी॥

इतः परमावरणदेवतास्वरूपभावौ वर्णयति—

वसुकोणनिवासिन्यो यास्ताः सन्ध्यारुणावशिन्याद्याः।
पुर्यष्टकमेवेदं चक्रतनोस्संविदात्मनो देव्याः॥४०॥ इति।

वसुकोणनिवासिन्यः सर्वरोगहराख्यचक्रनिवासनशीलाः याः वशिन्याद्यष्टशक्तयः ताः पूर्णाहम्भावदानसमर्थाः। कथम् तत्र रोगहारित्वं नाम पूर्णाहम्भावप्रदत्वमेव। अपूर्णं मन्यतां व्याधिः कार्पण्यैकनिदानभूरित्युक्तेः। सर्वरोगहरा एताः विमृशादिविशेषतः। इत्यभियुक्ततमोक्तेश्च। एवंभूतास्तास्सन्ध्यारुणाः अरुणाकारा भासन्त इत्यर्थः। अत एवेदमष्टकोणचक्रं संविदात्मनः सामीप्यात् ज्ञानमेवात्मनः स्वरूपं यस्यास्सा। "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" इति श्रुतेः स्वसंवित् पुरादेवीत्यागमश्च। देव्याः बहुस्यामिति विहरणस्वभावायाः चक्रतनोः चक्रात्मिकायाः पुर्यष्टकं सूक्ष्मशरीरमित्यर्थः। तथा चोक्तम्—

अन्तर्दशारगा देव्यो विद्युत्पुञ्जनिभाः शुभाः।
निगर्भाख्याः पूजनीयाः सर्वरक्षाविधायिनीः॥

शिवानन्दाश्च—

अष्टारांशप्रवेशोऽयं चिन्निर्याणेषु सादिकम् ।
सूक्ष्मंपुर्यष्टकं देव्यामविशेषमगौरवम् ॥ इति ।

तद्विषयवृत्तयस्ताः सर्वज्ञादिस्वरूपमापन्नाः ।
अन्तर्दशारनिलया लसन्ति शरदिन्दुसुन्दराकाराः ॥४१॥

तद्विषयवृत्तयः वसुकोणनिकटवासिन्यः । ताः स्वात्मैक्यरूपरक्षणधारिणीत्वेन प्रसिद्धाः । सर्वज्ञादिशक्तिदशकरूपं आपन्नाः । अन्तर्दशार निलयास्सर्वरक्षाकराभिधेयचक्रसमारूढाः निगर्भयोगिन्यः । शरदिन्दुसुन्दराकाराः स्वच्छप्रकाशधवलाकृतयः । लसन्ति प्रकाशन्ते । तथा चोक्तम्—

अन्तर्दशारगा देव्यो विद्युत्पुञ्जनिभाः शुभाः ।
निगर्भाख्याः पूजनीयाः सर्वरक्षाविधायिनीः ॥

तद्बाह्यपङ्क्तिकोणेषु योगिन्यस्सर्वसिद्धिदाः पूर्वाः ।
देवीधीकर्मेन्द्रिय–विषयमया विशदवेषभूषाढ्याः ॥४२॥

तद्बाह्यपङ्क्तिकोणेषु तस्य सर्वरक्षाकरचक्रस्य बाह्यभूतेषु उपरिस्थितेषु पङ्क्तिषु कोणेषु । सर्वार्थसाधकचक्रे तस्य कोणात्मकत्वात् । तत्र स्थिता योगिन्यः कुलकौलनामधेयाः सर्वसिद्धिदाः पूर्वाः सर्वसिद्धिप्रदाः प्रमुखाः शक्तयः । देवीधी कर्मेन्द्रिय विषयमयाः देव्यास्त्रिपुरायाः धीकर्मेन्द्रियाणि श्रोत्रादिज्ञानेन्द्रियाणि कर्मेन्द्रियाणि वागादीनि । तेषां विषयाः शब्दादयः अभिलपनादयश्च तन्मयाः तत्स्वरूपाः । विशदवेषभूषाढ्यः विशदाः शुभ्राकाराः । वेषाश्च भूषाश्च तैराढ्याः । अयमर्थः—मन्त्रदेवतात्माभेदरूपास्सिद्धिदायिन्यः स्वच्छाकृतयः शुभ्राभरणाभासन्त इति । तथा चोक्तं चतुश्शत्याम्—

श्वेतावराभयकराः श्वेताभरणभूषिताः ।
मन्त्राणां स्वप्रभारूपयोगादन्वर्थसंज्ञिकाः ॥
सर्वसिद्धिप्रदाद्यास्तु चक्रे सर्वार्थसाधके ।

इति सुभगोदयवासनायाञ्च—

बाह्यो दशारभागोऽयं बुद्धि कर्माक्षगोचरः । इति ।

भुवनारचक्रभवनादेवीमनुकरणविवरणस्फुरगाः ।
सन्ध्यासवर्णवसनाः सञ्चिन्त्यास्संप्रदाययोगिन्यः ॥४३॥

भुवनारचक्रं सर्वसौभाग्यदायकं चक्रं भवनं वासस्थानं यासां ताः । देव्यामनुकरणानि चतुर्दशकरणानि कर्मेन्द्रियाणि पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चमनोबुद्धयहङ्कारचित्ताख्यानि चत्वारि । प्रत्यभिज्ञायां तु त्रयोदशविद्यायाश्च बाह्यान्तःकरणावलिरिति । चित्तव्यतिरेकेण त्रयोदशत्वमुक्तम् । इह तु चित्तेन साकं चतुर्दशत्वमुक्तम । चित्तमये श्रीपीठेति । चित्तस्यापि—अभियुक्तैरन्तःकरणत्वेन परिगणनात् तेषां विवरणं व्याख्यानभूतं स्फुरणं चतुर्दशाररूपं यासां ताः । देवी तु स्वयमेवचतुर्दशकरणात्मकचतुर्दशारचक्रदेवतात्मना स्थिता इत्यर्थः । तथा चोक्तं शिवानन्दैः—

चतुर्दशारसरणीः करणानि चतुर्दश ।
चतुर्दशशिवारण्यं महादेव्याः स्मराम्यहम् ॥ इति ।

सन्ध्यायास्सवर्णं वसनं सदृशं वस्त्रं यासां ताः संप्रदाययोगिन्यः आदिशक्तिमयत्वेन सत्संप्रदायदेव्यः सर्वसंक्षोभिणीप्रभृतयः सञ्चिन्त्या अव्यक्तमिति सम्यग्भावनीयाः । तथा चतुश्शत्याम्—

शक्तेस्सारमयत्वेनप्रसृतत्वान्महेश्वरी ।
संप्रदायक्रमायाताश्चक्रे सौभाग्यदायके ॥
निरन्तर प्रभारूप सौभाग्य बलरूपतः ।
अन्वर्थसंज्ञका देवी अणिमासदृशाश्शुभाः ॥
सर्वसंक्षोभिणीपूर्वा देहैवयादि विशुद्धिदा ॥ इति ।

अव्यक्तमहदहङ्कृतितन्मात्रस्वीकृताङ्गनाकाराः ।
द्विरदच्छदनसरोजेजयन्ति गुप्ततरयोगिन्यः ॥४४॥

अव्यक्तं, अव्यक्ताख्यं तत्त्वम् । महत् महत्तत्वम् अहङ्कृतिरहङ्कारतत्वं, तन्मात्रा पृथिव्यादिभूततन्मात्राः पञ्च । संहृत्याष्टौ । एतैः—स्वीकृत आकारः स्वरूपं यासां ताः देव्यात्मका इत्यर्थः । गुप्ततरयोगिनी संज्ञाः मूलदेव्या अन्तरङ्गभूतत्वात् । एतासामनङ्गकुसुमादीनां गुप्ततरा इति संज्ञा यासां ता अनङ्गकुसुमाद्यष्टशक्तयः । वाग्भवाष्टकसर्वसंक्षोभणा ह्वये द्विरदच्छदनसरोजे सर्वसंक्षोभणाख्याष्टदलपद्मे जयन्ति सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते । तथा चोक्तं शिवेन—

कौलिकानुभवाविष्टरागपुर्यष्टकाश्रिताः ।
वाग्भवाष्टसम्बन्धसूक्ष्मवर्गस्वरूपताः ॥
लोकेगुप्ततराश्चान्याः–सर्वसंक्षोभणाह्वये ।
अनङ्गकुसुमाद्यास्तु रक्तकंचुकशोभिताः ॥
वेणीकृतलसत्केशाश्चापबाणधराः शुभाः ॥ इति ।

शिवानन्दाश्च—

वसुच्छदनपद्माङ्कदलोऽयं चक्रकोविभुः ।
अव्यक्ताद्याः प्रकृतयो भूतानां निश्चिनोम्यहम् ॥

अनङ्गकुसुमाद्यष्टशक्तयः द्विरदच्छदनसरोजे सर्वसंक्षोभणाख्याष्टदलपद्मे जयन्ति सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते ।

भूतानीन्द्रियदशकंमनश्च देव्याविकार षोडशकम् ।
कामकर्षिण्यादि—स्वरूपतष्षोडशारमध्यास्ते ॥४५॥

भूतानि पृथिव्यादीनि । इन्द्रियदशकं, श्रोत्रादिवागादीनि च । मनः अन्तः करणप्रधानं संहृत्य षोडशकं देव्याधिकारभूतावस्थान्तरस्वरूपम् कुतः ।

विमर्शाख्या च सा देवी पाञ्चविध्यं समागता ।
आकाशानिलसप्तार्चिस्सलिलावनि भेदतः ॥

इत्यादिवचनात् । एवंभूतषोडशकं षोडशारं सर्वाशापरिपूरकनामधेयं चक्रं । कामाकर्षिण्यादिस्वरूपतः कामाकर्षिण्यादिषोडश-

शक्त्याकारेण अध्यास्ते अधितिष्ठति । अधिशीङ्स्थाऽऽसाङ्कर्मेति कर्मत्वम् । सर्वाशापरिपूरकचक्रे एताः कामाकर्षिण्यादिगुप्तयोगिन्यः स्वरात्मिका निवसन्तीत्यर्थः । तथा चोक्तं चतुश्शत्याम्—

षोडशस्वरसन्दोहचमत्कृतिमयी कलाः ।
प्राणादिषोडशानां तु तत्वानां षोडशात्मिकाः ॥
बीजभूतस्वरात्मत्वात्तदसौ बीजरूपिकाः ।
अन्तरङ्गतया गुप्तयोगिन्यः सुव्यवस्थिताः ॥
कामाकर्षणरूपाद्या सृष्टिप्राधान्यतः प्रिये ॥

सुभगोदयवासनायाम्—

षोडशच्छदपद्मोत्थं भोगभूताक्षमानसम् ।
विकारात्मकतापन्नं देव्याः संभावयाम्यहम् ॥ इति ॥
मुद्रास्त्रिखण्डया सह संविन्मय्यस्समुच्छ्रितास्सर्वाः ।
आदिमही गृहवासाभासाबालार्ककान्तिभिस्सदृशा ॥४६॥
आधारनवकमस्या नवचक्रत्वेन परिणतं येन ।
नवनाथशक्तयोऽपि च मुद्राकारेण परिणतं येन ॥४७॥

त्रिखण्डया सह त्रिखण्डाख्यमुद्रया साकं समुच्छ्रिताः सर्वोत्कर्षेण वर्तमाना आदिमहीगृहवासाः आदिचतुरस्रनिलयाः । भासा कान्त्या बालार्ककान्तिभिः तरुणारुणरुचिभिः सदृशास्तुल्याः । संविन्मय्यः चिद्घन-निष्ठा इत्यर्थः । तथा चोक्तम्—

चिद्व्योमचारिणी मुद्रा शिवावस्था तु खेचरी ।

"सर्वसंक्षोभिणीप्रभृतयो दशमुद्रा भयध्वंसिन्यः परमानन्ददायिन्यः परमशक्तय इत्यर्थः ।" तथा चोक्तम्—

मोचयन्ति ग्रहादिभ्यः पश्वोघान् द्रावयन्ति च ।
मोचनं द्रावणं यस्मान्मुद्रास्ताः परिकीर्तिताः ॥ इति ॥

एतास्तु मुद्राः चतुरश्रादिबैन्दवान्तनवचक्राधिष्ठाननायिका इति परमशिवेन प्रपञ्चिताः दिङ्मात्रमुदाह्रियन्ते । तथा हि—

क्रियाशक्तिस्तु विश्वस्य मुद्राख्या संविदम्बिका ।
त्रिखण्डरूपमापन्ना सदा सन्निधिकारिणी ॥
सर्वस्य चक्रराजस्य व्यापिका परिकीर्तिता ।
योनिप्राचुर्यतस्सैषा सर्वसंक्षोभिणी पुनः ॥
वामाशक्तिप्रधानेयं द्वारचक्रस्थिताऽभवत् ॥

इत्यारभ्य—

संपूर्णस्य प्रकाशस्य भोगभूमिरयं पुनः ।
योनिमुद्रा कलारूपा सर्वानन्दमये स्थिता ॥ इति ॥

तत्तु तत एवावधार्यम् । यजुश्श्रुतिरपि— "नवानां चक्र अधिनाथास्सयोना नवमुद्रानवचक्रामहीनामिति ।" एतदेव विवृणोतिआधारेत्यादि —आधारनवकं अकुलसहस्रारमूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकानाहतविशुद्धिलम्बिकाऽऽज्ञाबिन्दुरूपं अस्याः उपासकस्वरूपिण्यास्सम्बन्धी । येन हेतुना नवचक्रत्वेन बैन्दवात्मना परिणतेन कारणेन । नवनाथशक्तयः पूर्वोक्ता नवमुद्राकारेण परिणता जाता इत्यर्थः । एतच्च स्वच्छन्दसंग्रहे प्रपञ्चितम् । ततः एवावधार्यम् ।

अस्यास्त्वगादिसप्तकमाकारश्चैवमष्टकं स्पष्टम् ।
ब्राह्मयादिमातृरूपं मध्यमभूबिंबमेतदध्यास्ते ॥४८॥

अस्याः देव्यास्त्वगादिसप्तकं त्वगादिसप्तधातवः । आकारः स्वरूपं च एवं रूपमष्टकम् । ब्राह्मयादिमातृरूपं ब्राह्मयाद्यष्टशक्तिस्वरूपमित्यर्थः । एतत् परिदृश्यमानं मध्यमभूबिंबं मध्यमचतुरश्रं अध्यास्ते निवसतीत्यर्थः ।

अणिमादिसिद्धयोऽस्याः स्वीकृतकमनीयकामिनीरूपाः ।
विद्यान्तरफलभूता गुणभावेनान्त्यभूनिकेतनगाः ॥४९॥

अस्याः परमेश्वर्याः अणिमाद्यष्टशक्तयः । विद्यान्तराणां हठयोगादीनां फलीभूताः स्वीकृतानि कमनीयानि मनोहराणि कामिनीरूपाणि अङ्गनारूपाणि याभिस्ताः । एवंभूताः गुणभावेन उपसर्जनभावेन । अन्त्यभूनिकेतनगाः सर्वान्त्यचतुरस्रे तिष्ठन्तीत्यर्थः । अयमर्थः—एतादृशपरमात्मोपासनेन साधकः परमेश्वरो भवति । तथोक्तमभियुक्तैः—

तदीयैश्वर्यविभ्रद्भिर्ब्रह्मविष्णुशिवादयः ।
ऐश्वर्यवन्तो भासन्ते स एवात्मा सदाशिवः ॥ इति ॥

एवं कामकलाविलसनरूपं चक्रक्रमं निगमय्य एतादृशं चक्रदेवता-मन्त्रस्वरूपं परमेश्वरात्मकगुरुक्रमज्ञान भावेन लभ्यत इति परमशिवादि-गुरुक्रमं शिष्यानुजिघृक्षया प्रतिपादयितुमुपक्रमते—

परमानन्दानुभवः परमगुरुर्निर्विशेषबिन्द्वात्मा ।
स पुनः क्रमेण भिन्नः कामेशत्वं ययौ विमर्शाशात् ॥५०॥

परमानन्द इत्यादि गुरुक्रमोविदित इत्यन्तेन। परमस्सर्वोत्कृष्ट आनन्दः परिपूर्णाहम्भावरूपः अनुभवः ज्ञानं यस्य सः। "एतस्यैवानन्द-स्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति" इति श्रुतेः। "प्रणमामि महादेवीं परमानन्दरूपिणीं।" इति स्मृतेश्च। परमगुरुर्निर्विशेषबिन्द्वात्मा परम-गुरुरादिनाथः परमशिवः तस्मात् आदिनाथात् निर्विशेषः। अभिन्नो बिन्दुः पूर्वोक्तकामकलारूपः स आत्मारूपं यस्य सः। आदिनाथरूपी परम-शिव इत्यर्थः। अयमर्थः– आनन्दोब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। चिन्मात्रं सर्वद्रष्टारं सर्वसाक्षिणं सर्वग्राहकं सर्वप्रेमास्पदं सच्चिदानन्दमेकरस-मेवायमात्मा सन्मात्रो नित्यः शुद्धो बुद्धस्सत्यो मुक्तो निरञ्जनो विभुर-द्वय आनन्दः। पर इत्याद्युपनिषदुक्तरीत्या चिदानन्दघनपरमार्थप्रकाश-विमर्शात्मा परमेश्वर एव परमकारुणिकः स्वयमेव स्वात्मानं कामकला-बिन्दुरूपकामकामेश्वरीरूपदिव्यमिथुनप्रमुखदिव्यसिद्धमानवौघादिक्रमाव-तीर्णोगुरुमण्डलात्मा सन् कचितन भक्तिभाजः संरक्षतीति तात्पर्यम्। एतच्च रहस्योपनिषदि श्रूयते यथा "यदेषाचक्रमे तच्चक्रं अभवत्। यदादौ भिन्ना स बिन्दुरभावत्। स आधारो जातः। सोऽयमात्मा आत्मै-वैषा शक्तिः सा भावाभावौ सदसत्" इति। तथैवाहुराचार्याः। एको नार्चकः उभयोरुभौ। जायते उभौ नित्यौ एकमेवोभौ अविनाभावात्। आधाराधेयभूतानि। ततो गुणा जायन्ते। लिङ्गानि तानि पिण्डानि। स शक्तिरभवत्। तदप्येष श्लोको भवति।

भावाभावमयो बिन्दुः भावः षष्ठात्मको भोगः ।
भावात्मकं तु तन्मध्यं चारुभावत्रयात्मकम् ॥ इति ॥

तदेषाभ्युक्ता मध्ये चक्रं शिवे बिन्दौ प्रपञ्चो लोकः । लोको देहः सनादरूपः सशब्दरूपः । अर्थात्मिका शक्तिः । चक्रं तनुः बिन्दुः प्राण मध्ये शक्तिरित्यादिना चक्रदेवतास्वरूपनिरूपणपुरस्सरं कामकामेश्वरीस्वरूपमेव निरूपितम् । तदेषाभ्युक्ता परो वा एष आनन्दः । स भोगयोनिः कामरूपा देवता । स आनन्दोयोनिः । आनन्दो ब्रह्म ब्रह्मैव सन् । ब्रह्माप्येति । ब्रह्मवेदब्रह्मैव भवति । ब्रह्मविदाप्नोति परम् ।'' ब्रह्म ब्रह्मवैकानेकप्रपञ्चास्यादित्यादिना च वाक्येन कामेश्वरीमभिधायान्तेऽपि तत्सर्वं त्रिपुरालोकमातापायाद्देवी सर्वदा सर्वरूपा इति सर्वोत्तरत्वं सर्वात्मकत्वं च कामेश्वर्याः प्रतिपाद्यन्त इति सर्वरक्षक एव परमशिव इति अथवा परमगुरुरिति छेदः । परमगुरुरादिनाथः । निर्विशेषः निष्प्रपञ्चः बिन्दुस्सच्चिदानन्दलक्षणः आत्मस्वरूपं यस्य स इति ।

बैन्दवे परमाकाशे सच्चिदानन्दलक्षणे ।
निष्प्रपञ्चे निराभासे निर्विकल्पे निरामये ॥

इत्यमृतानन्दवचनात् । रहस्याम्नायेऽपि—

अनुप्रविश्य तां शक्तिं वामाद्यैः पिण्डितो भवान् ।
समस्तबीजगर्भाढ्यः सूक्ष्मबिन्दुत्वमेति सः ॥ इति ॥

विरूपाक्षपञ्चाशिकायामपि—"बिन्दुर्विमर्शधर्माषण्णामेकोऽध्वनां प्राणः ।'' इति ।

साङ्ख्याद्योऽपि हंसास्सदा प्रणवसंस्थितान् ।
नादोपरि महादेवं पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा ॥

इत्यादिना बिन्दुनादात्मकं परमेश्वरमाह भगवान् वसिष्ठोऽपि । एवंविधबिन्द्वात्मा परमेश्वर एव कामकामेश्वरीप्रमुखगुरुमण्डलात्माऽभूदित्याह । स पुनः क्रमेण भिन्न इत्यादि । स पूर्वोक्तः परमात्मा । क्रमेण वक्ष्यमाणदिव्यसिद्धरूपेण भिन्नाद्वैरूप्यं प्रापितः । विमर्शांशात्

विमर्शः पूर्वोक्तलक्षणः । स्वात्मशक्तिः कामकलारूपा । तदंशः तदर्धभागः । तस्माद्धेतोः कामेशत्वं श्रीकामराजभावम् । ययौ प्राप । अयमर्थः—परमात्मा स्वयमेव स्वात्मानं विभज्य कामकामेश्वरीरूपः गुरुशिष्यभावमापन्नः सकलतन्त्रं प्रवर्तयामासेति ।

तथा चोक्तमुपनिषदि—"स इममेवात्मानं द्विधापातयत् । ततः पतिश्च पत्नी चाभवताम् ।" इति । आत्मैवेदमग्र आसीत् । एक एव सोऽकामयत जाया मे स्यात् अथ प्रजायेयेति ।" एकस्यैव ब्रह्मणः मिथुनरूपत्वं वक्ति । मिथुनीभूतस्य कामेश्वरत्वमपि श्रुतिरेवाह । यथा बृहदारण्यके—"काम एव यस्यायतनं हृदयं लोको मनो ज्योतिर्यो वै तं पुरुषं विद्यात् सर्वस्यात्मनः परायणं स वै वेदिता स्यात् याज्ञवल्क्य वेद वा अहं तं पुरुषं सर्वस्यात्मनः परायणं यमाधेय एवायं काममयः पुरुषः स एव दैवशाकल्यः । तस्य कामदेवतेति स्त्रिय इति होवाच" इति कामेश्वरस्य विहरणयोग्यां स्त्रियं कामेश्वरी प्रत्यक्षं ब्रूते । रहस्यागमश्च—

गुरुः शिष्यपदे स्थित्वा स्वयमेव सदाशिवः ।
लोकसंरक्षणार्थायतन्त्रं समवतारयत् ॥ इति ॥

एतदेव विशदयति ।

आसीनः श्रीपीठे कृतयुगकाले गुरुश्शिवो विद्याम् ।
तस्यै ददौ स्वशक्त्यैकामेश्वर्यै विमर्शरूपिण्यै ॥५१॥

श्रीपीठे मध्यत्र्यश्रान्तर्गतोड्याणपीठे । आसीनः नित्यसन्निहितः । गुरुः ज्ञानोपदेष्टा । तथा च शिवसूत्रम् । "गुरुरुपाय इति ।"

गुशब्दस्त्वन्धकारस्स्याद्रुशब्दस्तन्निवर्तकः ।
अन्धकारनिरोधित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ॥

शिवः सर्वप्रवर्तकः परमात्मा । कृतयुगकाले कृतयुगादौ । तस्यै । सा शक्तिः सर्वभूतानाम् निरवधिकानन्ददायिन्यै स्वशक्त्यै । रहस्यो-

पनिषदि "ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च वाणी लक्ष्मीः भवानीति ताः सप्रदायकाः क्रमात् । सर्वलोकप्रसूत्वेन सैव त्रिपुरा सैवानन्दं ददातीति ।" अन्यत्रापि "परोऽपि शक्तिरहितः शक्तः कर्तुं न किञ्चन । शक्तेश्च परमेशानि शक्त्या युक्तो भवेत्" इति । आगमानुसन्धानेन स्वस्वरूपसंप्रदायिन्यै विमर्शरूपिण्यै । हकारोऽन्त्यः कलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः । इति सङ्केतपद्धत्युक्तरीत्या अनुत्तरानन्दविश्रान्तिस्थानभूतशक्तिपररूपिण्यै कामेश्वर्यै सा कामा सर्वकामा काम एव लोका एव पुराणि तस्मात् त्रिपुरेत्युपनिषदुक्तरीत्या । सर्वदा सर्वप्रकारेण सर्वाभीष्टप्रदायिन्यै । स्वात्मभूतायै विद्यान्तरे तन्महामनुरिति । सैव शब्दा तनुः अस्य सवर्णरूपा परमा त्रिपदाभिधाभावात्रिगुणा त्रिवर्गरूपा नित्या निर्मला निष्प्रपञ्चा आत्मविद्या विभुर्वरविद्या य एवं वेद विद्वान् भवति । अथाहुर्विद्वांस इति । रहो रहस्यमिति । शिवोऽयमिति । स एवेमानि भूतानि सृजति रक्षति संहरति । अन्यथा वा करोति । सैव सो भवतीति रहस्योपनिषत्प्रतिपाद्यामात्मैक्यदायिनीमत्यन्तमात्मविद्यां ददौ उपदिदेश ।

अयमत्र संप्रदायः । यद्यपि समप्रधानौ समसत्वौ समौ तयोश्शक्तिरजराविश्वयोनिः आदिशक्तिररुणा विश्वजन्या । इति । साङ्ख्यायन शाखायामुभयोः कामकामेश्वर्योः समप्रधानमुक्तम् । तथापि विश्वयोनिर्विश्वजन्या इति सर्वकारणरूपिण्या एतयैव कामेश्वर्या रहस्यतन्त्रं सर्वोपनिषत्सारभूतं प्रवर्तयितुकामः परमशिवः प्रपञ्चसृष्ट्यनन्तरं आदियुगे—

महामध्यं च चक्रस्य महानन्दात्मकं पुनः ।
अनुत्तरविमर्शैकसारं संविन्मयं भजे ॥

इत्युक्तप्रकारेण प्रकाशानन्दसारमयमोड्याणपीठमास्थाय स्वयमपि श्रीचर्यानन्दनामधेयमुद्वहन् स्वाभिन्नायै पराभट्टारिकायै । श्रीविद्याक्रममुपदिदेश सा परा भट्टारिका त्रेतायुगद्वापरयुगकलियुगेषु वक्ष्यमाणदेशिकस्वरूपिणी ह्यतिरहस्य शाम्भवतन्त्रं प्रवर्तयामास । इति । अयं इह क्रमविवरणक्रमः । इह श्रीविद्यारत्नावगमने साधनद्वयमस्ति । कामराजसन्तानं सकलविद्यानुसन्ध्यविच्छिन्न इति प्राचीनगुरवोऽप्याचक्षते । लोपामुद्रासन्तानक्रमस्तु विच्छिन्नतया प्रवर्तत इति वर्णयन्ति । तत्क्रम-

प्रकारस्तु लिख्यते – तत्र दिव्यौघगुरवस्सप्त । सिद्धौघाश्चत्वारः । मानवौघगुरवस्त्वष्टौ । तत्र दिव्यक्रमो यथा—कृतयुगादौ परमशिव एव ओडयाणपीठात्मकमध्यबिन्दुनिवासी श्रीचर्यानन्दनाथनामा सन् स्वात्मशक्त्याख्यश्रीमहात्रिपुरसुन्दरी विमृष्टतनुः प्रथमो गुरुः । तथाचोक्तम् –

त्र्यश्रान्तरोड्याणपीठसंस्थकामराजशरीरिणी ।
अस्वराकारतां प्राप्यत्र्यश्रसङ्केतमध्यगात् ॥ इति ।

मध्यत्र्यश्राग्रकोणकामरूपपीठवाग्भवाधिष्ठातृकामेश्वरीरूपविमृष्टरूपः श्रीमदूर्ध्वदेवनाथस्त्रेतायुगगुरुः । तथा चोक्तम्—

त्र्यश्राग्रकोणगा या सा कामेशी कामपीठगा । इति ।

मध्यत्र्यश्रदक्षिणकोणस्थितजालन्धरपीठेस्थितकामराजाभिधेयवज्रेश्वरीमिलितस्वरूपः श्रीषष्ठनाथदेवो द्वापरगुरुः । तथा चोक्तम्—

त्र्यश्रदक्षिणकोणस्थवज्रेशी जालन्धरपीठगा । इति ।

मध्यत्र्यश्रोत्तर कोणगतपूर्णगिरिपीठस्थितशशक्तिबीजाभिधेयभगमालिनीविमृष्टदेहः श्रीमित्रदेवनाथः कलियुगगुरुः । तथा चोक्तम्—

त्र्यश्रस्योत्तरकोणस्था भगेशी पूर्णपीठगा । इति ।

मित्रेशदेवः कलियुगादौ भगवतीं लोपामुद्रां अगस्त्यं च महातपःपुञ्जमिथुनमनुगृहीतवान् । एतत्सप्तकं दिव्यौघसंज्ञकं गुरुपदेशादवगन्तव्यम् । इह तु प्रसङ्गादेवतावदुक्तम् । एतदेवाह—साप्येषेति—

सेयायमित्रसंज्ञां स्थानेशान् ज्येष्ठमध्यबालाख्यान् ।
चित्प्राणविषयभूतान् त्रेतायुगादिकारणत्रिगुरून् ॥५२॥

बीजत्रितयाधिपतीन् परीक्ष्य विद्यां प्रकाशयामास ।
एतैरोधत्रितयं समनुगृहीतं गुरुक्रमो विदितः ॥५३॥

सा पूर्वोक्ता परमशिवप्राणनायिका मित्रनाथदेवनाथसंज्ञा भीमो भीमसेन इतिवत् मित्रशब्दो मित्रदेवनाथपर्यन्तं धावति । स च मित्रदेवनाथः कलियुगगुरुः । तत्संज्ञा तन्नामधेयम् । इयाय प्राप । एतोच्चोपलक्षणम्---त्रेतायुगद्वापरयुगगुरुनामधेयधारणस्य त्रेतायुगादि-युगत्रयगुरुस्वरूपिणी भूत्वा संप्रदायं प्रवर्तयेदित्यर्थः । एतदेव विवृणोति —स्थानेशेत्यादिना—स्थानेशः स्थानानां मध्यत्र्यश्राग्रकोणदक्षिण कोणोत्तरकोणानां कामेश्वरीवज्रेश्वरीभगमालिनीनिलयानाम् । ईशा अधिष्ठात्री अत एव ज्येष्ठमध्यबालाख्या । ज्येष्ठः श्रीमदूर्ध्वदेवनाथः । मध्यः श्रीषष्ठदेवनाथः । बालः श्रीमित्रदेवनाथः । तेषामाख्यां नामधेयं यस्यास्सा तत्स्वरूपत्वादेतेषामिति भावः । चित्प्राणविषयभूताः चित्प्राणः परमशिवः चित्स्वरूपत्वात् प्राणरूपत्वाच्च । तथा माण्डूक्योपनिषदि—"नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञा न धनं न प्रज्ञमदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमव्यपदेश्यमेकात्म-प्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते । स आत्मा स विज्ञेयः ।" इति । चिन्मय एव श्रूयते । तथा प्राणमयत्वेनापि श्रूयते ।

तथा छान्दोग्ये—"यथा वा अरानाभौ समर्पिताः । एवमस्मिन् प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् । प्राणः प्राणेन याति । प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति प्राणो ह पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राण आचार्यः ।" इति । "एतादृशचित्प्राणस्वरूपस्य परमशिवस्य विषयभूता भोग्यभूता । कुतः, एष देवोऽनया देव्या नित्यं क्रीडार-सोत्सुकः ।" इत्यभिनवगुप्तपादोक्तिः । अथवा स्थानेशान् ज्येष्ठमध्य-बालाख्यान् चित्प्राणविषयभूतानिति गुरुविशेषणं वा । तथापि स एवार्थः । एवंविधा सा पराभट्टारिका । त्रेतायुगादिकारणत्रिगुरून् पूर्वोक्तश्रीमदूर्ध्वदेवनाथादीन् । बीजत्रितयं वाग्भवादिकम् । तस्याधि-पतीन् वाच्यभूतान् । एतच्च पूर्वमेवोक्तम् । एतान् त्रिविधदेशिकान् परीक्ष्य शोधयित्वा विद्यां—

पञ्चभूतमयं विश्वं तन्मयी सा सदानघे ।
तन्मयी मूलविद्या च तथा च कथयामि ते ॥

परमशिवाननारविन्दनिःसृताखिलकारणभूतामादिविद्यां प्रकाशयामास प्रवर्तयामसेत्यर्थः । अत्र किञ्चिद्वदामः—इह परीक्ष्य विद्यां प्रकाशयामासेत्यनेन श्रीसदाशिवात्मा देशिकोत्तमः । सत्संप्रदायसिद्धमिदं मार्गं बहुकालमात्मोपासनमाचरते । "दान्तायोपसन्नाय शिष्यायोपदिदेश च । दीक्षापूर्वं महेशानि विद्यामुपदिशेद्गुरुः ।" इत्यादिना । दीक्षा च शिव सायुज्यदायिनी । इति ।

ददाति शिवतादात्म्यं क्षिणोति च मलत्रयम् ।
अतोदीक्षेति स प्रोक्ता दीक्षाशब्दार्थवेदिभिः ॥इति स्मृतेः ।

"दीयते परशिवैक्यभावना क्षीयते सकलपापसञ्चयः ।" इत्यभियुक्तोक्तेश्च । सा च त्रिविधा । आणवशाक्तसाम्भवभेदात् ।

त्रिविधा सा भवेद्दीक्षा प्रथमा आणवीपरा ।
शाक्तेयी शाम्भवी चेति सद्यो मुक्ति प्रदायिनी ॥ इति स्मरणात्

तत्र आणवदीक्षाविधिर्विशेषविहितद्रव्याणि निर्वर्त्यपरदेवतातर्पणध्यानासक्तरूपिणीत्युक्तेः । शाक्तेयी तु यथोपनतशक्तिसिद्धार्थसाध्या । शाम्भवी च—

सिद्धे शक्ति समालोक्य तयाकेवलया शिशौ ।
निरूपायं कृता दीक्षा शक्तेयी परिकीर्तिता ॥ इति ।

अभिसन्धि विनाऽचार्यशिष्ययोरुभयोरपि—

देशिकानुग्रहेणैव शिवता व्यक्ति कारिणी ।
सेयं हि शाम्भवी दीक्षा शिवा वेशन कारिणी ॥ इति च ।

एवंविधदीक्षाऽभावे नकुत्राप्यधिकारी । तथा श्रीमालिनीविजयकारः प्राह—

न चाधिकारिता दीक्षां विना योगोऽस्ति शाङ्करे ।
न च योगाधिकारित्वं शाम्भवमेकमेव वा ॥

अभिसन्धिरहिताचार्यकृपामात्र साध्या यथेऽयंभवेत । अपि मन्त्राधिकारित्वमुक्तं च शिवदीक्षया । इति । शिष्यस्य वित्तभावेऽपि-आचार्यः शिष्ययोग्यंतामवधार्य स्वधनेन व कुर्यात् । स्वस्याप्यभावे लघूपायेन व कुर्यात् ।

स्वधनेन दरिद्रस्य कुर्याद्दीक्षां स्वयं गुरुः ।
अपि दूर्वाम्बुभिर्यद्वा दीक्षया मोक्षयेच्छिशुम् ॥

इति सर्वात्मना दीक्षितस्यैव ब्रह्मविद्यायामधिकारो नान्यस्येति स्थितिः । दीक्षा च परदेवतासन्तर्पणं साध्येत्युक्तम् । सन्तर्पणं च द्रवद्रव्य-विशेषसाध्ययुगविशेषतर्पणं तृप्तिमयदम् । 'दैवतस्यामृतेन तु ।' इत्युक्त त्वात् । अत एव तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषन्ति । यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेनेति । यज्ञस्यापि ब्रह्मविषयत्वात् ।

श्रूयते स च यज्ञश्च पूजा सा च त्रिधा मता । परा अपरा परापरा चेति । तथा च परमशिवः परमेश्वरीं प्रत्याह—

तव नित्योदिता पूजा त्रिभिर्भेदैर्व्यवस्थिता ।
परा चाप्यपरा गौरी तृतीया च परापरा ॥

प्रथमाद्वैतभावस्था सर्वप्रबरगोचरा ।
द्वितीया चक्रपूजा च सदा निष्पाद्यते मया ॥

एवं ज्ञानमये देवि तृतीया च परापरा ।
उत्तमा च परा ज्ञेया विधानं शृणु सांप्रतम् ॥
महापद्मवनान्तस्स्थां कारणानन्दविग्रहाम् ।
तदङ्गोपाश्रयां देवी वाग्भवे गुरुपादुकाम् ॥
आप्यायितजगद्रूपां परमामृतवर्षिणीम् ।
सञ्चिन्त्य परमाद्वैतभावनामदघूर्णितः ॥
दहनान्तरसंपर्कनादालोकनतत्परः ।
विकल्पसत्यसङ्कल्पविमुखोऽन्तर्मुखस्सदा ॥
चित्कल्लोलाभिललितसङ्कोचस्त्वतिसुन्दरः ।
इन्द्रियप्रीणनैर्द्रव्यैर्विहितस्वात्मपूजकः ।
न्यासं निवर्तयेद्देवि षोढान्यासपुरस्सरम् ॥

इत्यादिपरा पूजा । अत्र स्वरूपमध्ये—

द्वितीया चक्रपूजा च सदा निष्पाद्यते मया । इति ।

परमशिवः स्वयमेव बाह्यवर्ती वरिवस्यां करोमीति चक्रपूजां प्रशंसयामास । सोऽपि बाह्ययागः पञ्चविधः—

केवलो यामलो मिश्रश्चक्रयुग्वीरसङ्करः । इति स्मृतेः ।

एतल्लक्षणमाम्नायादेवावगन्तव्यम् । ततश्च सन्तर्पणपूर्वकमेवाभिषेचनादिकर्म कर्तव्यम् । तच्च सन्तर्पणद्रव्यं निष्पाद्यमित्युक्तम् । द्रवद्रव्यं च हेतुभूतनिदानकारणा प्रथमादिशब्दाभिधेयं परमामृतरूपं मधु । तेनैव परदेवतायागस्य साध्यत्वात् । सोमेनाग्निष्टोमयागवत् ।

न च वाच्यमग्निष्टोमीयं पशुमालभेत सोमग्रहान् गृह्णातीत्यादिविधिसद्भावात् । युक्तम् । इतरेषां यागानां सोमसाध्यत्वमुक्तम् ।

इह तु ब्राह्मणो न सुरां पिबेत् न मांसमश्नीयादित्यादिना निषेधादिदं दर्शनमनुपपन्नमिति। न वयं निषेधविधिमुल्लङ्घ्य स्वातन्त्र्येणैव निदानात्परदेवतातर्पणं कर्तुमुचितमिति ब्रूमः। किन्तु इदमेव शाम्भवदर्शनमौपनिषदसंप्रदायादागतमिति निश्चित्य ह्येवमवोचाम। तर्हि निषेधस्य का गतिरिति चेदुच्यतेऽदीक्षित पुरुषविषयोऽयं निषेधविधिः। दीक्षितस्यानेनैव हेतुनादेवतायागः कर्तव्य इति मुख्य-विधिसद्भावात् तथा च ऋग्वेदाम्भोधिमध्योद्धृतसाङ्ख्यायनशाखायां आदिसुन्दरीवरिवस्याद्वारा देवतासाम्राज्यसाधनतानिदानस्य श्रूयते—

इमां विज्ञाय सुरया मदन्ति परिस्रुता तर्पयन्त स्वपीठम्।
नाकस्य पृष्ठे महतो वसन्ति परं धाम त्रैपुरं चाविशन्ति॥

अत्र परिस्रुतं द्रव्यमित्यर्थः। तथा निघण्ट्वादिप्रसिद्धिः। अत एव वाजपेयादिप्रसिद्धक्रतुष्वपि परमेश्वर्या मन्त्रनायिकाया विहितत्वादेव निषिद्धस्यापि द्रव्यस्य स्वीकारो दरीदृश्यते। कुत्र वा परमेश्वरीविधिः श्रूयते। ललितोपाख्याने च—

परितुष्टास्मि मद्याब्धे त्वया साह्यमनुत्तमम्।
देवकार्यमिदं किञ्चित्त्वया निर्विघ्नितं कृतम्॥
इतः परं मत्प्रसादाद्वाजपेयादिके मखे।
सोमपानवदत्यन्तमुपयोज्यो भविष्यसि॥
यागेषु मन्त्रपूतं त्वां पास्यन्त्यखिलदेवताः।
यागेन मन्त्रपूतेन पीतेन भवना जनाः॥
सिद्धिमृद्धिं बलं स्वर्गमपवर्गं च बिभ्रतु।
महेश्वरी महादेवो बलदेवश्च भार्गवः।
दत्तात्रेयो विधिर्विष्णुस्त्वां पास्यन्ति महाजनाः॥ इति।

परमशिवोऽपि पूजासङ्केतके—प्रधानादिवरीवस्यां निर्वर्त्येत्याह। यथा वा—

महापद्मवनान्तस्थे कारणानन्दविग्रहे।
ममाङ्कोपाश्रयां देवीमिच्छाकामफलप्रदाम्।
भवतीं त्वन्मयैरेव नैवेद्यादिभिरर्चयेत्॥

इत्यादितः उक्त्वाऽन्ते नैवेद्यद्रव्यं स्पष्टमाचष्टे। यथा वा—

अर्चनापिशितैर्गन्धैर्धूपैराराध्य देवताम्।
चक्रपूजां विधायेत्थं कुलदीपं निवेदयेत्॥
कौलिकाचारसंयुक्तैर्वीरैस्तु सह पूजयेत्॥

अन्य रहस्यागमे परमेश्वरः प्रथमादिपदार्थपञ्चकस्य देवतायागमाह—

मादिपञ्चकमीशानि देवताप्रीतिकारकम्। इति।

ननु शिव एव स्वतन्त्रप्रवर्तकः इति। तदुक्तं महामायाशाम्बराद्यनेकतन्त्रानुष्ठानप्रसङ्गः प्राप्नोतीति चेत्तदुक्त्वा विशेषादिति चेन्न। तेनैवतत्तदधिकारिभेदेन अनुष्ठेयानीमानि तन्त्राणि। इह तु शाम्भवदर्शनं मुमुक्षूणामेवोपास्यमिति प्रपञ्चितत्वात्। यथा—

मोहशास्त्राणि सर्वाणि मयैव कथितानि वै।
मुक्त्यन्तरं तु गत्वैव मोहनाय दुरात्मनाम्॥

इत्युक्त्वा—

मथित्वा ज्ञानमन्थेन वेदागममहार्णवम् ।
सारज्ञेन मया देवि कुलधर्मस्समुद्धृतः ॥
मेरुसंर्षपयोर्यद्वत्सूर्यखद्योतयोरिव ।
तथान्यसमयस्याम्बा कुलस्य महदन्तरम् ॥

इत्यादि कुलदर्शनस्वरूपमभिधाय तत्रनिष्ठस्यैव मोक्षो नान्यसमयनिष्ठस्य इत्याह—

एतज्ज्ञात्वा वरारोहे सद्यः खेचरतां व्रजेत् ।

उदितः पुण्यानन्दादिति कामकलाङ्गनाविलासोऽयम् ।
परशिवभुजङ्गभावाकर्षणहर्षाय कल्पते नित्यम् ॥५४॥

चिन्तान्तरङ्गतरलस्तृष्णासलिलः प्रपञ्चवाराशिः ।
यदनुग्रहेण तीर्णस्तस्मै श्रीनाथनाविकाय नमः ॥५५॥

उदित इति—पुण्यानन्दात् पुण्यानन्दाख्यात् स्वास्मादुदितः उत्पन्नः। अयं कामकलाङ्गनाविलासः। कामेश्वराविनाभूता विमर्शशक्तिः। कामकला सैवाङ्गना सुन्दरी तस्या विलासश्चक्रावरणदेवतादिरूपः। स एव विलासः दयितेक्षणे सति तत्कालो चित्त विकारः। परशिवः प्रकाशैकस्वभावभुजङ्गः रसिकः विटः तस्य मावो हर्षितसञ्जातोत्कर्षः। उद्विलास इति यावत्। एवंभूताय हर्षायानन्दाय कल्पते समर्थो भवति। भावाकर्षणहर्षायेति पाठान्तरे—तस्मात्तस्यावलोकनेन भावस्याकर्षणमुदय। तेन यो हर्षितः हर्षः। विलासेक्षणेन समुत्पन्नान्तरो विकारविशेषो भावः। तेनोपार्जितो विलासो भावजननद्वारा हर्षहेतुर्भवतीत्यर्थः। लोकेऽपि प्रियतमविलासदर्शने रसिकनायकस्य श्रङ्गारभावोदयपूर्वको हर्ष उत्पद्यते। तद्वत्परशिवस्यात्मशक्तीक्षणाभिमुख्यस्य चिच्छक्तिभूतकामकलाविलासः।

पदविक्षेपादिरूपनिरवधिकानन्दप्रदो भवति । आर्यारूपेण स्वसुखारविन्दनिस्सृतो ग्रन्थरूपः कामकलाविलासः परशिवप्रीति सङ्कल्पत इति। कामकलाविलासानुभवतः पुण्यानन्दमहात्मा एवं वदति च प्रतीयते। इति शब्दः परिसमाप्तिद्योतक इत्यवगन्तव्यम् । अधिगतमध्ययनमननुभावितं चार्थतः खरस्य चन्दनभारवत्केवलं परिश्रमकरं भवतीति निरुक्तकारादिवचनेनार्थज्ञानहीनस्याध्ययनस्य निष्फलत्वश्रवणात् ।

ज्ञातव्यः सर्ववेदार्थो वेदानां कर्मसिद्धये ।
पाठमात्रमधीता च पङ्के गौरिव सीदति ॥
वेदस्याध्ययनं सर्वं धर्मशास्त्रस्य चैव हि ।
अजानतोऽर्थं तत्सर्वं तुषाणां खण्डनं यथा ॥

इत्यादि श्रुतिसिद्धकामकलास्वरूपं परिपूर्णं प्रपञ्चितमिति शिवम् ।

॥ इति श्रीनटनानन्दकृतं कामकलाचिद्वल्लीव्याख्यानं संपूर्णम् ॥

॥ श्रीगुचरणारविन्दार्पणमस्तु ॥

॥ श्रीमहात्रिपुरसुन्दर्यर्पणमस्तु ॥

॥ शुभमस्तु ॥

सर्वोदय प्रिंटिंग प्रेस, ग्वालियर